हितोपदेश

श्री नारायण पंडित के लोकप्रसिद्ध संस्कृत पुस्तक
हितोपदेश का सरल हिन्दी अनुवाद

आर्य समाज पंजाबी बाग
पुस्तकालय
सं०......218......
नई दिल्ली-26

राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली

अनुवादक : आनन्द

मूल्य : तीन रुपये पचास पैसे (3·50)

◈

दसवां संस्करण 1970; © राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
हरि मुद्रण प्रतिष्ठान, द्वारा शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली में मुद्रित
HITOPADESHA (Sanskrit Classics) by Narayan Pandit

भूमिका

ी नारायण पण्डित-लिखित हितोपदेश भारत के प्राचीन लोक-
का अमूल्य रत्न है। संसार के साहित्य में पशु-पक्षी-जीवन
ोक-कथाओं का श्रीगणेश हितोपदेश द्वारा ही हुआ। पूर्वत:,
ृत के हितोपदेश की टीकाएं केवल परीक्षार्थियों की गुत्थी ही सुलझा
, सर्वसाधारण उनसे विशेष लाभ न उठा सके। इसलिए मेरे मन
रफल, सुबोध भाषा में इसका रूपान्तर करने की इच्छा हुई।

कई महानुभाव हितोपदेश और पंचतत्र आदि ग्रंथों को पशु-पक्षियों की कल्पित कथाएं कहकर उपहास की दृष्टि से देखते हैं। वे यह अनुभव नहीं करते कि अन्य चराचर जगत् की तरह पशु-पक्षियों के समुदाय भी प्रकृति के ही अंग हैं। पक्षियों का नियत समय पर प्रात: उठना, कठोर परिश्रम द्वारा नीड़ बनाना, कोकिल का मधुर संगीत, कौए का चैतन्य और खरगोश का चातुर्य क्या हमें शिक्षा नहीं देते ? महापुरुषों का कथन है कि जहां से भी कोई शिक्षा मिले, ग्रहण कर लो।

इस रूपान्तर में हितोपदेश के भावपूर्ण, गूढ़ श्लोकों को छोड़ा न जा सका। उन्हें कहीं-कहीं पर कथोपकथनों के रूप में अथवा कहीं-कहीं उनके अंशों को उसी रूप में उद्धृत कर दिया गया है। हां, उनका विस्तृत ुवाद करके पुस्तक का कलेवर नहीं बढ़ाया गया है। मुख्यकथा के तार-न्य को श्रृंखलाबद्ध रखने का प्रयास किया गया है। आशा है, पाठक इसकी शिक्षाप्रद और मनोरंजक कथाओं से अवश्य लाभ उठाएंगे।

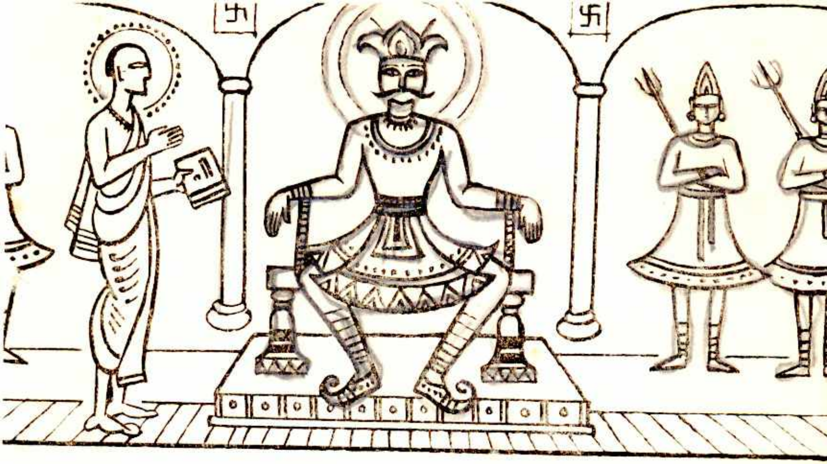

आमुख

भागीरथी के पवित्र तट पर पटना नाम का एक नगर है। किसी समय इस नगर में राजा सुदर्शन राज्य करता था। उसकी राज्यसभा में किसी विद्वान् ने इन श्लोकों को पढ़कर सुनाया--

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्यदर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥
यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

अर्थात्, शास्त्र मनुष्य के नेत्र हैं। इन नेत्रों की सहायता से वह वस्तु का यथार्थ ज्ञान ही नहीं, परोक्ष ज्ञान भी कर लेता है। इनके बिना आंखों वाला आदमी भी अन्धा ही रहता है।

यौवन, धन, अधिकार और अविवेक, इनमें से प्रत्येक मनुष्य को पाप-कर्म में गिरा सकता है; जिसके पास ये चारों हों वह पाप के कौन-से गर्त में गिरेगा--इसका अनुमान भी कठिन है।

राजा सुदर्शन ने जब इन श्लोकों को सुना तो उसे अपने

मूर्ख पुत्रों का ध्यान हो आया। ये पुत्र मूर्ख होने के साथ-साथ व्यसनी भी थे। राजा सोचने लगा——कई कुपुत्रों से तो अच्छा है कि एक ही पुत्र हो, किन्तु गुणी हो। कुपुत्रों की अधिक संख्या आकाश के अगणित तारों की तरह निरर्थक रह जाती है। एक सुपुत्र चन्द्रमा की भांति अकेला ही कुल को उज्ज्वल बना देता है। पर इन राजकुमारों में तो कोई भी सुपुत्र नहीं।

विचारों के इस भंवर में उसका सिर चकरा गया और अन्त में उसने निश्चय किया कि जिस तरह भी हो सकेगा, वह अपने पुत्रों को नीतिज्ञ और विद्वान् बनाएगा।

राजा सुदर्शन ने अगले दिन एक सभा बुलाई। पटना के अतिरिक्त अन्य स्थानों के विद्वान् भी उसमें पधारे। राजा ने सब विद्वानों का अभिनन्दन करते हुए कहा :

विद्वानो, मुझे केवल अपने पुत्रों की चिन्ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये पुत्र मेरे वंश को कलंकित करेंगे। संसार में उसी पुत्र का जन्म लेना सफल होता है जो अपने वंश की मान-मर्यादा बढ़ाए। निरर्थक पुत्रों से क्या लाभ? कोई विद्वान् मेरे मूर्ख पुत्रों को भी विद्वान् बना दे तो मैं उसका उपकार मानूंगा। इस कार्य को पूरा करने के लिए मैं छह मास का समय देता हूं।

सभा में सन्नाटा छा गया। किसी भी अन्य विद्वान् में राजपुत्रों को इतने थोड़े समय में राजनीतिज्ञ बना देने की सामर्थ्य नहीं थी। केवल विष्णुशर्मा नाम का एक विद्वान् अपने आसन से उठा और बोला :

राजन्, मैं वचन देता हूं कि छह महीने के अन्दर-अन्दर मैं राजपुत्रों को राजनीतिज्ञ बना दूंगा।

राजा ने अपने पुत्रों को विष्णुशर्मा के साथ विदा किया। विष्णुशर्मा ने इन राजपुत्रों को जिन मनोरंजक कहानियों द्वारा राजनीति और व्यवहार-नीति की शिक्षा दी, उन कथाओं और नीति-वाक्यों के संग्रह को ही 'हितोपदेश' कहा जाता है।

इस कथा-संग्रह के प्रथम भाग को 'मित्रलाभ' का नाम दिया गया। पहले उस भाग की प्रथम कथा कहते हैं।

पहला खण्ड

मित्रलाभ

असाधना: वित्तहीना: बुद्धिमन्त: सुहृत्तमा: ।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत् ।।

अतुल धन, साधन के बिना भी बुद्धिमान् लोग
मैत्री के बल पर अपना कार्य पूरा कर लेते हैं।

इस खण्ड की कथा-सूची

१. मित्रलाभ
२. लोभ बुरी बला है
३. करनी का फल
४. पहचान बिना मित्र न बनाओ
५. धन-संचय का बुरा परिणाम
६. थोड़ा संचय हितकर है
७. युक्ति से कार्य लो

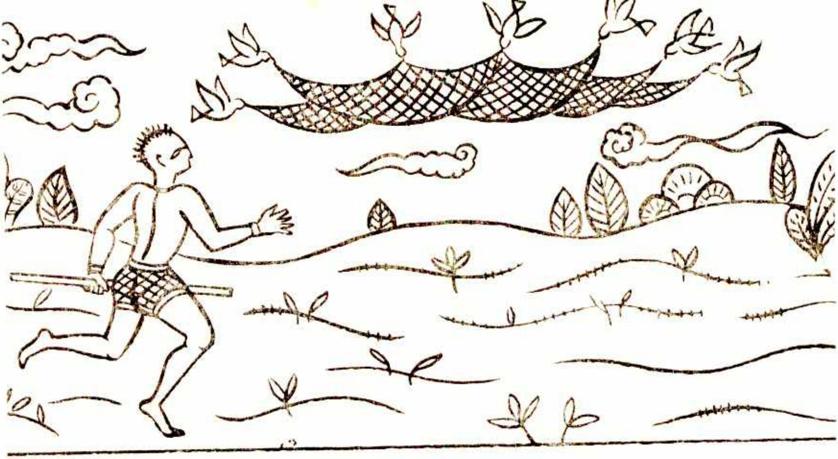

१

मित्रलाभ

न मातरि, न दारेषु, न सोदर्ये, न चात्मजे।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ् मित्रे स्वभावजे।।

मनुष्य को माता, पत्नी, पुत्र और भाई में भी उतना विश्वास नहीं होता जितना स्वाभाविक मित्रों में होता है।

गोदावरी के तट पर सेमर का एक विशाल वृक्ष था। उसकी शाखाओं पर भांति-भांति के पक्षी रहते थे। उसी वृक्ष पर लघुपतनक नाम का एक कौवा भी रहता था। एक दिन प्रातःकाल उसे एक शिकारी दिखाई पड़ा। उस शिकारी को देखकर वह ऐसे डरा मानो उसीका काल मनुष्य-रूप में आ रहा हो। वह सोचने लगा—यह अपशकुन आज न जाने क्या अनर्थ करेगा?

शिकारी अपने मार्ग पर बढ़ता ही गया। लघुपतनक भी

शिकारी का भेद जानने के लिए गुप्त रूप से उसके पीछे-पीछे चल दिया।

उसने देखा, शिकारी कुछ दूर चलकर एक वृक्ष के नीचे ठहर गया। उसने अपनी पोटली खोली और कुछ चावलों को पृथ्वी पर बिखेर दिया। फिर जाल फैलाया और पक्षियों के फंसने की प्रतीक्षा में पास ही छिपकर बैठ गया।

थोड़ी ही देर बाद कबूतरों का सरदार चित्रग्रीव, सपरिवार उड़ता हुआ उसी मार्ग से निकला। वहां पृथ्वी पर बिखरे चावलों को देखकर कबूतर ठहर गए और चावल खाने को लपके। सरदार चित्रग्रीव उन कबूतरों में सबसे अधिक चतुर था। उसने कबूतरों से कहा :

साथियो, इस निर्जन वन में चावलों के दाने देखकर मुझे विस्मय होता है। अवश्य कुछ दाल में काला है। हमें यही उचित है कि हम इनको जैसे का तैसा छोड़ दें और आगे बढ़ें। कहीं लेने के देने न पड़ जाएं।

यह नहीं हो सकता !—सब कबूतर एक ही स्वर में बोल उठे :

परोसी हुई थाली से कैसे मुंह मोड़ा जाए ?

एक और कबूतर ने भी चित्रग्रीव का समर्थन किया।

चित्रग्रीव ने कहा :

भाइयो, मैं फिर कहता हूं कि इन दानों से दूर ही रहना चाहिए। कहीं लोभ में फंसकर हमारा भी वही हाल न हो जो लोभ के कारण एक राहगीर का हुआ था।

राहगीर की क्या कथा है ?––कबूतरों ने पूछा।

चित्रग्रीव ने राहगीर की कथा सुनाई……

२

लोभ बुरी बला है

लोभः पापस्य कारणम् ।

सब अनर्थों का मूल लोभ है ।

साथियो ! एक दिन मैं दक्षिण के वनों में भ्रमण कर रहा था । वहां मैंने एक तालाब के किनारे बूढ़े व्याघ्र को बैठे देखा । कहने को तो वह व्याघ्र था, पर उसने एक हाथ में कुशाएं ले रखी थीं, दूसरे हाथ में सोने का कंगन। उसकी तापसी मुद्रा देखकर मुझे हंसी आ गई । पर दूसरे ही क्षण मैं गम्भीर हो गया । मैं सोचने लगा––यह व्याघ्र आज अवश्य कोई न कोई नया गुल खिलाएगा ।

सरोवर के पास ही एक पगडंडी थी । आने-जाने वालों का वहां तांता लगा था । व्याघ्र पथिकों को सम्बोधित करके कह रहा था––पथिको ! मैं आज कुछ दान करना चाहता हूं । मेरे पास सोने का कंगन है । जो चाहे इसे ले सकता है ।

लोग उसकी ओर देखते और उसकी लम्पटता पर हंसकर आगे का रास्ता नापते। इतने में एक लोभी पथिक भी उसी रास्ते से निकला । व्याघ्र ने उसे भी निमन्त्रण दिया । सोने के कंगन का नाम सुनकर पथिक सोचने लगा––मेरा आधा जीवन बीत गया। अभी तक मैं अपनी पत्नी के लिए ऐसा सुन्दर कंगन नहीं बनवा पाया। अगर किसी तरह यह कंगन मुझे मिल जाए तो शेष जीवन सुखपूर्वक बीत सकता है। यह सोच वह वहीं खड़ा हो गया। उसकी विचारधारा ने करवट

बदली। वह फिर सोचने लगा--कहीं अमृत में विष का मेल तो नहीं ? ऐसा न हो कि कंगन लेता-लेता अपने प्राण ही दे दूं।

दूसरे ही क्षण वह फिर सोचने लगा कि धन भी तो खतरे में पड़कर ही मिलता है। वह इसी उधेड़बुन में लगा हुआ था कि व्याघ्र ने फिर अपने वाक्यों को दुहराया। लोभ और भी तीव्र हो उठा। पथिक व्याघ्र से बोला--व्याघ्र ! तुम्हारा कंगन कहां है ?

व्याघ्र ने कंगन को घुमा-फिराकर दिखा दिया। पथिक फिर बोला :

यह तो ठीक है कि तुम्हारे पास कंगन है, पर तुम्हारे जैसे हिंसक पशु पर विश्वास कैसे किया जाए ?

हे भोले पथिक ! --व्याघ्र ने महान् परोपकार एवं विरक्त भाव से कहा--आज से कुछ समय पूर्व जब कि मैं भी पूर्ण युवा था, अन्य पशुओं की भांति पापी था। मैंने अगणित मनुष्यों और पशुओं को मारा। इसका दंड मुझे यह मिला कि मैं वंश-हीन हो गया। मेरे युवा पुत्र शिकारियों के शिकार बने। मेरे पापों का दंड मुझे मिल गया। उस दिन से मैं सदा डरकर रहने लगा। एक दिन मैं इसी तरह उदास भाव से सरोवर के तट पर बैठा हुआ था कि एक धर्मात्मा इसी रास्ते से निकला। मुझे उदास देख उसने मेरी उदासी का कारण पूछा। जब मैंने अपनी दुःख-भरी कहानी सुनाई तो उसने कहा :

हे व्याघ्र ! यज्ञ, शास्त्रों का अध्ययन, दान, तप, सत्य, धैर्य, क्षमा और निर्लोभ : ये धर्म के आठ अंग हैं। तुम धर्म का आचरण करो। तुम्हें मानसिक शांति मिलेगी।

उसीके उपदेश से प्रभावित होकर मैं धर्म-कार्य करने लगा। आज मैं यह सोने का कंगन दान करना चाहता हूं। पर दुःख इस बात का है कि कोई मुझपर विश्वास ही नहीं करता। संसार की तो भेड़-चाल है। यदि कोई जाति से कुलटा धर्म का उपदेश करे तो कोई भी उसे स्वीकार नहीं करता।

व्याघ्र की आप बीती और नीतिपूर्ण बातों को सुनकर पथिक को उसकी विद्वत्ता और अहिंसक प्रवृत्ति पर विश्वास हो गया। पथिक कुछ बोलने ही वाला था कि व्याघ्र फिर बोल उठा :

पथिक ! तुम व्यर्थ ही भयभीत होते हो। तुम दान लेने योग्य हो, अतः मैं तुम्हें ही देना चाहता हूं। शास्त्रों में भी लिखा है कि दान दरिद्र को ही देना चाहिए। ऐसा दान ही सफल होता है। तुम मुझे बहुत ही दरिद्र दिखाई पड़ रहे हो। तुम्हें दान देने से मेरी मनोवांछित अभिलाषा पूर्ण हो जाएगी। तुम शीघ्र ही इस सरोवर में स्नान कर लो और इस पार आकर मेरा दान ग्रहण करो।

साथियो ! व्याघ्र की बातों से कंगन के लोभ में आकर वह लोभी पथिक तालाब में उतर गया। सरोवर में गहरा दलदल था। पथिक थोड़ा आगे बढ़ा कि उस दलदल में फंस गया और ज्यों-ज्यों निकलने की कोशिश की, दलदल में और अधिक फंसता गया। पथिक को दलदल में फंसा देखकर व्याघ्र उसकी ओर बढ़ा और बोला : पथिक, स्नान क्यों नहीं करते ?

पथिक बोला : स्नान कैसे करूं ? मैं दलदल में फंस गया हूं। तुम्हीं मुझे निकाल दो।

व्याघ्र उसके पास पहुंचकर बोला : तुम इस तालाब के

दलदल की कहते हो, मैं तुम्हें संसार के ही दलदल से छुड़ाने वाला हूं।

इतना कहकर व्याघ्र ने पथिक को सहज ही में खा लिया।

× × ×

कहानी सुनाने के बाद चित्रग्रीव कबूतरों से फिर बोला : इसीलिए मैं कहता हूं कि तुम लोग लोभ में फंसकर अपना सर्वनाश न करो। इन चावल के दो दानों से मृत्यु झांक रही है।

चित्रग्रीव के इतना समझाने पर भी कबूतरों ने हठ नहीं छोड़ा। सबके सब उन दानों पर टूट पड़े। किसीने ठीक ही कहा है कि विपत्ति पड़ने पर बुद्धिमान् व्यक्ति की भी बुद्धि मलिन हो जाती है। कबूतरों का उन दानों पर बैठना था कि शिकारी का जाल सिमट गया। तब सब कबूतर जाल में फंस गए। सबके सब कबूतर चित्रग्रीव की सराहना करने लगे और आपस में झगड़ने लगे। चित्रग्रीव ने फिर सबको समझाते हुए कहा : यह समय लड़ने और झगड़ने का नहीं। अब तो जिस प्रकार भी हो सके, छूटने का उपाय करना चाहिए। कुछ क्षणों के लिए कबूतरों ने पंख फड़फड़ाने बन्द कर दिए और उपाय सोचने लगे।

कबूतरों को जाल में फंसा देखकर शिकारी अपने स्थान से उठा और कबूतरों की ओर बढ़ चला। शिकारी को अपनी ओर आते देखकर कबूतरों के प्राण सूखने लगे। तभी चित्रग्रीव बोला :

साथियो, आपत्ति कभी भी घबराने से दूर नहीं होती। हमें आलस्य का त्याग करना चाहिए और 'छोटी-छोटी वस्तुओं

के संगठन से भी कार्य सिद्ध हो जाते हैं' की नीति के अनुसार एकसाथ जाल लेकर उड़ जाना चाहिए।

चित्रग्रीव की बात का सब कबूतरों ने समर्थन किया और वे सब जाल-समेत उड़ चले। कबूतरों को जाल-समेत उड़ता देखकर शिकारी के आश्चर्य की सीमा न रही। वह भी उनके पीछे-पीछे भागा और सोचने लगा कि जब इनमें फूट पड़ेगी, तब ये स्वयं पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे। पर कबूतर उड़ते ही गए। शिकारी भागते-भागते थक गया। कबूतर भी उसकी पहुंच से बाहर हो गए थे। निराश होकर शिकारी हाथ मलता हुआ वापस मुड़ गया।

शिकारी के लौट जाने पर कबूतरों ने अपने सरदार चित्र-ग्रीव से पूछा––स्वामिन्! अब क्या करना चाहिए!

चित्रग्रीव सोचने लगा––आपत्ति में माता, पिता और मित्र : ये तीन ही स्वाभाविक सहायक होते हैं और शेष तो अपनी कार्यसिद्धि के लिए ही हित करते हैं। माता-पिता का तो अब पता नहीं। हां, मित्र कई हैं। तो फिर किसके पास चलना चाहिए। इसी तरह थोड़ा समय विचार करने पर उसे अपने परम मित्र हिरण्यक चूहे का ध्यान आया। वह बोला :

मित्रो, आओ हम अपने मित्र हिरण्यक के पास चलें। वह अपने तेज़ दांतों से इस जाल को पल-भर में काट डालेगा।

सब कबूतर हिरण्यक के बिल के पास जाकर उतर पड़े। चित्रग्रीव के बुलाने पर हिरण्यक अपने बिल से बाहर निकला। अपने मित्र को आपत्ति में देख वह बहुत दुःखी हुआ और बोला :

मित्र चित्रग्रीव! यह जाल तो बहुत बड़ा है और मैं एक

छोटा-सा चूहा हूं इसलिए सारे जाल को काटना तो मेरी शक्ति से बाहर की बात है। हां, मैं पहले तुम्हारे बन्धन काटता हूं। इसके बाद तुम्हारे साथियों के बन्धन यथाशक्ति काट दूंगा।

चित्रग्रीव : मित्र, यह अन्याय है; अपने आश्रितों की चिन्ता न करके पहले अपना उद्धार कराना स्वार्थ है। तुम बारी-बारी से सबके बन्धन काटते चलो, जब मेरी बारी आ जाए तब मेरे बन्धन भी काट देना।

हिरण्यक बोला--मित्र, मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। तुम चिन्ता न करो। जब तक मेरे दांत नहीं टूटते, बन्धन काटता ही रहूंगा।

हिरण्यक ने धीरे-धीरे सब कबूतरों के बन्धन काट दिए। बन्धन-मुक्त होकर सब कबूतर उड़ गए।

× × ×

लघुपतनक उनका अनुसरण करता हुआ हिरण्यक और चित्रग्रीव की इस मैत्री से अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह भी हिरण्यक के बिल के पास गया और बोला :

मित्र हिरण्यक ! तुम धन्य हो ! तुम्हारे जैसे मित्र संसार में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलते। मैं चाहता हूं तुम मुझे भी अपना मित्र बना लो।

तुम कौन हो जो मित्र बनना चाहते हो ? हिरण्यक बिल के भीतर से ही बोला।

मैं लघुपतनक नाम का कौआ हूं।

चूहे और कौए की कैसी मित्रता ? मैं तुम्हारा भक्ष्य हूं और तुम मेरे भक्षक ! आग और पानी भी क्या कभी एकसाथ रह सकते हैं ? मुझे ऐसी मित्रता नहीं करनी। कहीं मेरा भी

वही हाल न हो जो हरिण और गीदड़ का हुआ था––हिरण्यक ने कहा।

वह कैसे ! मैं भी सुनना चाहता हूं मित्र ! मुझे भी हरिण और गीदड़ की कहानी सुनाओ––लघुपतनक ने प्रार्थना की।

हिरण्यक ने तब यह कथा सुनाई…

३

करनी का फल

वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।

सामने दूध-सा मधुर बोलने वाले और पीठ पीछे विष-भरी छुरी मारने वाले मित्र को छोड़ देना चाहिए।

मगध देश में चम्पारन नाम का विस्तृत वन है। किसी समय उस वन में एक कौआ और एक हरिण रहा करते थे। दोनों घनिष्ठ मित्र थे। हरिण स्वेच्छा से वन में निश्चिन्त भ्रमण करता था। एक दिन वह मस्त होकर घूम रहा था कि उसे एक सियार ने देख लिया। हरिण के पुष्ट अंग और मांसल शरीर को देखकर सियार के मुंह में पानी भर आया। वह जानता था कि हरिण के साथ-साथ दौड़ना या उससे लड़ना सम्भव नहीं, अतः नीति से काम लेना चाहिए। इसलिए हरिण के पास जाकर वह बोला :

मित्र, आप सकुशल तो हैं ?

तुम कौन हो ? मैं तो तुम्हें पहचानता नहीं।––हरिण ने आश्चर्य से पूछा।

मित्र, मैं क्षुद्रबुद्धि नाम का सियार हूं। इस विशाल वन में मेरा कोई भी साथी नहीं। आज आपको देखकर प्रतीत होता है, मुझे मेरा अभीष्ट मिल गया।--सियार बोला।

यह तो मेरा सौभाग्य है--हरिण ने नम्रतापूर्वक कहा--मेरे लिए कोई सेवा हो तो कहें।

सेवा! मैं तो बस यही चाहता हूं कि आपकी मित्रता का सौभाग्य प्राप्त करूं और सदा आपके ही साथ रहूं।

--इतना कहकर गीदड़ हरिण के साथ हो लिया। दोनों दिन भर हिलमिलकर खेलते रहे। सायंकाल गीदड़ भी हरिण के साथ-साथ उनके घर की ओर गया। दोनों अभी वृक्ष के नीचे पहुंचे ही थे कि हरिण के परम मित्र कौए ने हरिण से पूछा :

मित्र, आज यह दूसरा कौन है ?

यह सियार है। हम लोगों से मित्रता करना चाहता है।

मित्र ! जिसके कुल, निवास, शील, स्वभाव आदि का। पता न हो, उसे मित्र नहीं बनाना चाहिए। नीति कहती है :

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।

जिसके कुल अथवा शील-स्वभाव का पता न हो ऐसे किसी-को भी अपने साथ रहने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए। अन्यथा इस प्रकार प्रत्येक पर विश्वास करने वाला उसी भांति मारा जाता है, जैसे बिलाव के दोष से बेचारा गिद्ध मारा गया था।

हरिण बोला : वह कैसे ?

कौए ने तब बिलाव और गिद्ध की कथा सुनाई···

४

पहचान बिना मित्र न बनाओ

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।

जिसके कुल-शील और स्वभाव का पता न हो
ऐसे किसी को भी निवास नहीं देना चाहिए ।

गंगाजी के तट पर गिद्धौर नाम का पर्वत है । उस पर एक लम्बा-चौड़ा पाकड़ का वृक्ष था । यह वृक्ष बहुत पुराना था। था । इसके कोटर में जरद्गव नाम का गिद्ध रहता था । जरद्-गव इतना वृद्ध हो चुका था कि वह अपने लिए भोजन आदि का भी प्रबन्ध नहीं कर पाता था। उसकी दीन दशा पर दया करके उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षियों ने उससे कहा :

तुम हमारे चले जाने के बाद हमारे बच्चों की देख-रेख किया करो, हम तुम्हें भोजन दिया करेंगे । इससे तुम्हें भोजन मिल जाया करेगा और हमारे बच्चों की देख-रेख हो जाएगी ।

जरद्गव ने यह बात प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर ली और उनका जीवन उसी भांति चलता रहा ।

एक दिन पक्षियों के शावकों को खाने के लिए एक बिलाव उनपर झपटा । पक्षी बिलाव के भय से चिल्लाने लगे। जरद्गव ने उनका क्रन्दन सुना तो सचेष्ट होकर बोला :

कौन है ?

बिलाव को यह नहीं पता था कि उनका कोई पहरेदार भी यहीं बैठा है। वह हक्का-बक्का रह गया । भय से वह कांपने लगा । परन्तु थोड़े ही समय बाद वह सजग हो गया ।

उसने सोचा––तब तक भय से नहीं डरना चाहिए जब तक वह सामने न आ जाए। जब वह सामने आ जाए, तब जो कुछ बन पड़े, उसे दूर करने के लिए करे। इस समय अगर मैं भागता हूं तब भी मैं पक्षियों को खा तो सकता नहीं। अतः कुछ सोचकर दीर्घकर्ण बिलाव जरद्गव की ओर बढ़ा और पास जाकर बोला :

महात्मन्! प्रणाम हो।

कौन हो तुम, जो मुझे प्रणाम कर रहे हो?

भगवन्, मैं दीर्घकर्ण नाम का बिलाव हूं।

बिलाव का नाम सुनना था कि जरद्गव की आंखें खुल गईं। वह गरजकर बोला :

तुम यहां क्यों आए हो? भाग जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें अभी मार डालूंगा।

पहले जो मैं कहता हूं, कृपया आप उसे सुन लें। तदनन्तर आप जैसा चाहें करें। नीति कहती है कि किसीसे केवल विजातीय होने के कारण बैर नहीं करना चाहिए। उसका व्यवहार देखने के उपरान्त वह जिस योग्य हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करें।

दीर्घकर्ण की बात सुनकर जरद्गव कुछ शान्त हुआ और बोला :

कहो, अपने आने का प्रयोजन कहो।

मैं यहीं गंगाजी के पावन तट पर निवास करता हूं। आजकल प्रातःकाल स्नान आदि के उपरान्त थोड़ा-सा फलाहार ग्रहण कर लेता हूं। तत्पश्चात् पाठ-पूजा में संलग्न हो जाता

हूं। इसी भांति मैंने आजकल चान्द्रायण व्रत धारण किया हुआ है।

कुछ रुककर दीर्घकर्ण फिर बोला——मुझे इसी तरह यहां रहते काफी समय बीत गया है। जब से मैं इस वन में आया हूं अनेक पक्षियों के मुंह से आपके ज्ञान तथा अध्ययन की प्रशंसा कई बार सुन चुका हूं। मेरी कई दिनों से आप जैसे महात्माओं के साथ ज्ञान-चर्चा करके कुछ ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा थी। आज आप जैसे विद्यावृद्ध एवं वयोवृद्ध महानुभाव के दर्शन करके मुझे असीम शान्ति प्राप्त हुई। एक बात में फिर दुबारा कहूंगा कि मैं तो आपकी सेवा में कितनी श्रद्धा और विश्वास लेकर आया था। पर आप तो मेरे आते ही···

बीच में ही दीर्घकर्ण की बात काटकर जरद्गव बोला——छोड़ो भी इस बात को।

दीर्घकर्ण हंसते हुए बोला——आप अब इसकी चिन्ता न करें। वह तो भ्रम था। आपका स्वभाव तो महान् व्यक्तियों जैसा है। महान् लोग वृक्ष की भांति होते हैं। जैसे कोई भी वृक्ष शरीर काटने वाले लकड़हारे के आने पर अपनी छाया नहीं समेट लेता अपितु सबको समभाव से देखता है, इसी भांति आपको तो शत्रु से भी वैर नहीं है। और फिर——

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।

साधु लोग तो गुणरहित अज्ञानी पर भी दया करते हैं। यदि उनके पास धन नहीं तो न सही, मीठी बातों से ही वे अतिथि का सत्कार करते हैं। फिर आपके तो कहने ही क्या हैं?

दीर्घकर्ण की बात सुनकर जरद्गव बोला :

भाई, बात यह है कि बिलाव स्वभाव से मांसभक्षी होता है। यहां तो उनके भक्ष्य पक्षी रहते ही हैं। अतएव सजग रहना पड़ता है।

जरद्गव की बात सुनते ही पृथ्वी को छूकर अपने कान पकड़ते हुए बिलाव बोला :

राम-राम, मैं चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान कर रहा हूं। धर्म-शास्त्रों का मैंने भली भांति अध्ययन किया है। शास्त्र के 'अहिंसा परमो धर्मः' (अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है) के सिद्धान्त को वर्षों से मानता आया हूं। धर्म ही तो जीवन का सार है।

एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।

धर्म ही प्राणी का सबसे बड़ा बन्धु है जो कि मरने के बाद भी नहीं छोड़ता।

बिलाव के धर्म-वचनों को सुनकर गिद्ध को भी उसपर श्रद्धा होने लगी। उसने बिलाव को भी अपने ही साथ में रहने की आज्ञा दे दी। बिलाव कुछ दिन तो शांत रहा और फिर धीरे-धीरे वह एक-एक करके पक्षियों को खाने लगा। वृक्ष के सब पक्षी अपने बच्चों को न पाकर रोते और विलाप करते; पर कारण नहीं जान पाते। एक दिन पक्षियों ने कोटर में पड़े पंखों को देखा। अब वह और सतर्क होकर खोज करने लगे। बिलाव को जब पता चला तो वह नौ दो ग्यारह हो गया। पक्षियों ने कोई कारण न पाकर जरद्गव को ही दोषी समझ लिया और उसे मार डाला।

× × ×

कौए के मुंह से इस कहानी को सुनकर गीदड़ आग-बबूला हो गया और बोला :

काकराज, जब आपकी इस हरिण के साथ मित्रता हुई थी तब आप भी तो इसके लिए नये थे। अब आपका प्रेम क्यों बढ़ता ही जा रहा है? अभी हरिण ने मित्रता देखी ही कहां है?

आपस की कलह को शान्त करने की इच्छा से हरिण ने उन दोनों को शान्त किया। तीनों उसी वन में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन एकान्त स्थान पाकर सियार हरिण से बोला : मित्र! अब यहां सूखे मैदान में कुछ भी नहीं रखा। यहां से कुछ दूरी पर लहलहाता हुआ अनाज का खेत है। चलो, वहीं चलें।

अब हरिण सियार के साथ उसी खेत में जाने लगा। ये वहां खाते और खेत का नाश भी करते। एक दिन खेत के मालिक ने तंग आकर खेत में जाल बिछा दिया। हरिण वहां चरने पहुंचा और जाल में फंस गया। उसे अपने ऊपर अब गुस्सा आ रहा था। वह सोच रहा था कि यदि मैं अनाज के लोभ से नित्यप्रति यहां न आता तो कभी न फंसता। हरिण इस तरह सोच ही रहा था कि सियार उसी रास्ते से निकला। हरिण को जाल में फंसा देखकर वह उसके पास गया। अपने मित्र को आते देखकर हरिण को धैर्य बंधा। वह सोचने लगा— अब यह अवश्य अपने तीखे दांतों से जाल को काट डालेगा। उसके पास आने पर हरिण उससे बोला :

मित्र, मैं जाल में फंस गया हूं। तुम्हारे दांत तो बहुत तीखे हैं। कृपा करके मेरे बन्धनों को काट दो।

हरिण की बात सुनकर सियार ने जाल की ओर देखा और सोचा—यह तो बड़े मज़बूत जाल में फंसा हुआ है। अब

यह किसी भी तरह नहीं छूट सकता। वह कुछ सोचकर बोला :

मित्र, यह काम तो कोई कठिन नहीं था। पर, आज रवि-वार का दिन है और मेरा आज व्रत है। अगर मैं अपने दांतों से तांत के बने इस जाल को काटता हूं तो व्रत खण्डित हो जाएगा। मुझे पाप भी लगेगा। हां अगर तुम थोड़ा धैर्य रखो तो कल सुबह मैं आऊंगा और तुम्हारे देखते ही देखते इस जाल के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा।

हरिण सियार का उत्तर सुनकर हैरान रह गया। उसे गीदड़ से स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी। गीदड़ हरिण के सामने से एक ओर हो गया और थोड़ी दूरी पर एक झाड़ी में छिपकर बैठ गया। उसके मुंह में बार-बार पानी भर आ रहा था। वह सोच रहा था कि कब खेत का स्वामी आए और मेरी कई दिनों की इच्छा पूरी हो।

इधर कौए ने जब हरिण को ठीक समय अपने स्थान पर नहीं पाया तो चिन्तित हो उठा। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद वह उसे खोजने निकला। कुछ दूर उड़ने पर उसने हरिण को जाल में फंसा देखा। कौवा हरिण के पास पहुंचा और बोला :

मित्र, आज तुम्हारा परम मित्र कहां है ?

हरिण : कौन सियार ? उसका नाम मत लो। वह तो मुझे खा जाना चाहता है। उसीके छल से मेरी आज यह दशा हो गई है। अब कोई बचाव का रास्ता निकालो।

दोनों विचार ही करते रहे कि सवेरा हो गया। उसी समय कौवे ने दूर ही से देखा—खेत का स्वामी हाथ में लाठी

लिए चला आ रहा था। अब कौए को एक उपाय सूझा, वह हरिण से बोला :

मित्र, तुम सांस रोककर इस तरह लेट जाओ कि खेत का स्वामी तुम्हें मरा हुआ समझे। अपना पेट फुला लो, टांगें अकड़ा लो। जैसे ही मैं बोलूं, उठकर भाग जाना। कौवे की बात हरिण को बहुत पसन्द आई। उसकी बात मान वह धरती पर लेट गया।

इतने में खेत का मालिक आया। जाल में हरिण को फंसा देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। पास जाकर उसने हरिण को बिल्कुल बेजान-सा देखा।

निश्चिन्त होकर उसने जाल समेटना प्रारम्भ कर दिया। जाल समेटते हुए वह हरिण से कुछ ही दूर गया था कि कौए ने ऊंचे स्वर में चिल्लाना शुरू कर दिया। हरिण कौए की पुकार सुनते ही भाग खड़ा हुआ। बेजान-से पड़े हरिण को भागते देख किसान ने डण्डा फेंककर मारा।

लेकिन वह डण्डा हरिण के न लगकर विश्वासघाती गीदड़ के सिर पर जा लगा। वह पापी अपने पाप से स्वयं ही मारा गया।

× × ×

हिरण्यक फिर बोला, इसलिए मैं कहता हूं कि भक्ष्य और भक्षक में मित्रता हो ही नहीं सकती।

लघुपतनक ने उत्तर दिया—मित्र ! मित्र को खाने से किसी का पेट सदा के लिए तो भर नहीं जाता। फिर तुम तो इतने छोटे हो कि मेरा एक समय का आहार भी नहीं बन सकते।

हिरण्यक : तुम हमारे शत्रुपक्ष के हो। शत्रुपक्ष का प्राणी कभी भी भलाई नहीं कर सकता। पानी कितना भी गरम क्यों न हो, आग को बुझा ही देता है।

हिरण्यक के बार-बार इन्कार करने पर भी लघुपतनक नहीं माना और बोला :

मित्र, तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सब मैं पहले ही सुन चुका हूं। वास्तव में मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि या तो तुम्हारे साथ मित्रता ही करूंगा अन्यथा आत्महत्या कर लूंगा। मुझे इस बात का दुःख नहीं कि तुम मुझसे रूखेपन में बात कर रहे हो। मैं जानता हूं कि सज्जन लोग नारियल के फल के समान होते हैं। ऊपर से तो वे रूखे-सूखे दिखाई देते हैं और अन्दर से मीठे और सरस होते हैं; बेर की भांति नहीं कि जिसके ऊपर तो मिठास होता है, पर अन्दर गुठली होती है। इसके साथ-साथ सज्जनों में एक गुण और भी होता है। वे लोग प्रीति के टूटने पर भी सम्बन्ध नहीं तोड़ते। तुममें ये सब गुण हैं। तुम्हारे अतिरिक्त तुम जैसा मित्र मुझे और कहां मिलेगा? अतः हे मित्रवर! तुम बिल से बाहर निकलकर मुझसे मैत्री करो।

हिरण्यक लघुपतनक के श्रद्धायुक्त वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने बिल से बाहर निकल आया। हिरण्यक लघुपतनक से गले मिलते हुए बोला :

मित्र, तुम्हारी दृढ़ता और मित्र-प्रेम को देखकर मैं अधिक प्रसन्न हूं। कहीं दुष्ट से मित्रता न कर बैठूं, इसलिए मैंने इतने दोष गिनाए। आओ, अब हम सदा मित्र रहने की प्रतिज्ञा करें।

दोनों ने आपस में जीवन-भर मित्र रहने की प्रतिज्ञा की।

कुछ दिनों बाद की बात है। एक दिन लघुपतनक हिरण्यक से बोला :

मित्र ! इस वन में अब कई दिनों से खाना भी नहीं मिलता। सोचा है इस वन को छोड़कर अब किसी दूसरे वन में चला जाऊं।

हिरण्यक बोला—जिस प्रकार अपने स्थान से टूटे हुए दांत, केश और नाखून अच्छे नहीं लगते, उसी प्रकार अपने स्थान से भ्रष्ट प्राणी भी सुख नहीं पाता।

लघुपतनक : यह तो तुम ठीक कहते हो। पर जिस स्थान पर भोजन ही प्राप्त न हो, उस स्थान पर रहने से क्या लाभ ? फिर भाई, मैं तो पुरुषार्थ पर विश्वास करता हूं। पुरुषार्थी के लिए अपने-पराये में कुछ भेद नहीं। वह तो जहां जाता है अपने पुरुषार्थ से ही सफलता प्राप्त करता है। परदेश भी उसके लिए अपना ही देश हो जाता है। दंडकारण्य में कर्पूरगौर नामक एक सरोवर है। उसमें मन्थर नाम का एक कछुआ मेरा मित्र रहता है। वह केवल उपदेश करना ही नहीं जानता, स्वयं उसपर आचरण भी करता है। निश्चय ही वह वहां हमारा प्रेमपूर्वक स्वागत करेगा।

दोनों वहां चलने को सहमत हो गए और शीघ्र ही मन्थर के निवास-स्थान पर पहुंच गए।

लघुपतनक बोला—मित्र, हिरण्यक का विशेष सत्कार करो। क्योंकि इन जैसे प्राणी संसार में दुर्लभ हैं।

सत्कार के बाद मन्थर ने उससे पूछा—मित्र, अपने नगर से चलकर इस निर्जन वन में आने का प्रयोजन बताओ।

हिरण्यक ने तब अपने अनुभव की कथा सुनाई…

५

धन-संचय का बुरा परिणाम

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।

धन की केवल तीन ही गतियां होती हैं दान, भोग और नाश। जो दान नहीं देता, भोग भी नहीं करता, उसके धन की तीसरी गति होती है। उसका धन नष्ट हो जाता है।

चम्पक नामक नगर में संन्यासियों का एक मठ है। किसी समय उस मठ में चूड़ाकर्ण नाम का एक संन्यासी रहता था। वह भोजन से बचे हुए अन्न को खूंटी पर टांगकर सोता। उसके सो जाने पर मैं उछल-कूदकर उस अन्न को खा लिया करता था। एक दिन उसका वीणाकर्ण नाम का एक मित्र उससे मिलने आया। वे दोनों आपस में बातचीत करने लगे। भूख से व्याकुल होकर मैं भी उछल-उछलकर खूंटी पर टंगे भिक्षापात्र की ओर बढ़ने लगा। चूड़ाकर्ण वीणाकर्ण के साथ बातचीत करने के साथ-साथ हाथ में फटा बांस लेकर पृथ्वी पर मारकर बजाता जा रहा था। यह देखकर वीणाकर्ण बोला—मित्र, आज तुम मेरी बात ध्यान से क्यों नहीं सुन रहे ? कारण क्या है ?

चूड़ाकर्ण : मित्र, क्या कारण बताऊं ? इस स्थान पर एक चूहा रहता है। वह सदा मेरे भिक्षापात्र में से भोजन चुरा

लिया करता है।

वीणाकर्ण ने खूंटी की ओर देखा और फिर बोला——यह छोटा-सा चूहा इतने ऊंचे स्थान पर उछलकर कैसे चढ़ जाता है ! कोई न कोई इसका कारण अवश्य होगा। मेरे विचार में तो इसके बिल में धन का कोष है। उसकी गर्मी से यह इतना उछलता है।

कुछ क्षण विचार करने के उपरान्त संन्यासी ने फावड़ा लेकर मेरे बिल को खोद डाला और उसमें जो कुछ भोजन अथवा मेरा धन-धान्य रखा था, ले लिया। धन छिन जाने के उपरान्त मैं धन की चिन्ता में इतना निर्बल हो गया कि अपने भोजन के लिए भी पहले की भांति उछल-कूद न सका। एक दिन धीरे-धीरे जा रहा था तो मुझे इस दीन दशा में देखकर चूड़ाकर्ण बोला :

धन से प्राणी बलवान् होता है और धन से ही लोग उसे विद्वान् कहते हैं। इस पापी चूहे को ही देखो, आज धन न रहने के कारण साधारण चूहे की भांति चल रहा है।

चूड़ाकर्ण की बात सुनकर मैंने विचार किया——यह सत्य ही कहता है। प्राणी के हाथ, पांव, कान, नाक आदि वही इन्द्रियां होती हैं; उसी प्रकार की बुद्धि होती है, बेचारा पुरुष भी वही होता है जो आज से पहले था, परन्तु धन के न रहने पर वही प्राणी क्षण-भर में बदल जाता है। अब तो मेरा भी वही हाल है। अतः अब मेरा यहां रहना उचित नहीं। तो क्या मैं भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करूं ? यह भी असम्भव है। भिक्षा मांगकर खाने से तो भूखों ही मर जाना अच्छा है।

इसी भांति विचार करके मैंने लोभवश पुनः उसी भवन में

घर बनाया। उसका फल भी पाया। मैं धीरे-धीरे चल रहा था कि वीणाकर्ण ने उसी फटे हुए बांस से मुझे पीटा। मार पड़ने पर मुझे हार्दिक खेद हुआ। उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया कि कभी भी आशा का सहारा नहीं लूंगा। सदा निराश रहकर ही परिश्रम करूंगा। अतः उसी दिन से मैं इस निर्जन वन में चला आया। कुछ समय के उपरान्त यह लघुपतनक नाम का मित्र मुझे भगवान् की कृपा से प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् लघुपतनक की कृपा से आज आपके दर्शन हो गए।

मन्थर बोला—मित्र, जो होना था वह तो हो चुका। आपने जो इतना अधिक संचय किया, यह उसीका परिणाम है। आप संचय न करते तो आपको उसके नाश का दुःख भी न होता। अर्थ का तो उपभोग या दान ही सर्वश्रेष्ठ उपयोग है। तुम्हारी ही भांति संचय करने के कारण एक गीदड़ की मृत्यु हो गई थी।

हिरण्यक : वह क्या कथा है?

मन्थर : सुनो!

६

थोड़ा संचय हितकर है

कर्त्तव्यः सञ्चयो नित्यं, कर्त्तव्यो नातिसञ्चयः।

संचय करना तो युक्त है, पर अधिक संचय नहीं करना चाहिए।

कल्याण नामक नगर में भैरव नाम का शिकारी रहता था। एक दिन शिकार खेलने के लिए अपने हाथों में धनुष-बाण

लेकर वह वन की ओर निकल पड़ा। उसने वन में एक मृग को मारा और उसे अपने कन्धे पर रखकर चल दिया। मार्ग में उसने एक भयानक सूअर देखा। सूअर शिकारी की ओर बढ़ता चला आ रहा था। शिकारी ने उसी समय मृग को कन्धे से उतारा और तीर चलाकर सूअर को घायल कर दिया। क्रोध में भरकर सूअर भी शिकारी पर झपटा और अपने तीखे दांतों से उसने शिकारी का पेट फाड़ दिया। शिकारी वहीं पर गिर पड़ा। सूअर भी तीर लगने से कुछ देर तड़पकर मर गया। दोनों के इस युद्ध में पैरों के नीचे आकर एक सांप भी मर गया।

थोड़ी देर बाद दीर्घराव नाम का एक गीदड़ भी उसी रास्ते से निकला। भूख से व्याकुल होकर वह इधर-उधर भटक रहा था। मरे हुए तीन प्राणियों को एकसाथ देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। मन ही मन भाग्य की सराहना करते हुए विचार करने लगा—आज सौभाग्य से मुझे इतना अधिक आहार मिल गया है। इस भोजन से अब मैं निश्चिन्त होकर तीन मास तक निर्वाह कर सकूंगा। एक मास तक तो यह मनुष्य का शरीर मेरा निर्वाह करेगा। हरिण और सूअर को खाकर मैं दो मास तक आनन्द से निर्वाह करूंगा सर्प और धनुष की डोरी एक-एक दिन के लिए पर्याप्त होगी।

यह विचारकर गीदड़ धनुष की डोरी को सबसे पहले खाने लगा। बार-बार चबाने से धनुष की डोरी टूट गई और धनुष की नोक सियार के तालू को छेदकर बाहर निकल आई।

मन्थर बोला—इसलिए मैं कहता हूं कि संचय करना तो कोई बुरा नहीं, पर अधिक संचय भी नहीं करना चाहिए।

× × ×

मन्थर बोला—अच्छा, छोड़ो इन बातों को। अब हम तीनों यहां सुखपूर्वक रहें और पिछली बातों को भुला दें। जिस प्रभु ने इस असार संसार का निर्माण किया है, वह हमारा और अखिल विश्व का पालन भी करेगा।

इस प्रकार वहां रहते उन्हें पर्याप्त समय व्यतीत हो गया। एक दिन एक हरिण व्याकुल होकर उसी मार्ग से भागता हुआ जा रहा था। उसे देखकर मन्थर पानी में घुस गया। हिरण्यक बिल में घुस गया और लघुपतनक उड़कर वृक्ष की शाखा पर बैठ गया। कुछ क्षण बाद लघुपतनक ने ध्यान से दूर तक देखा। परन्तु जब उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया तो उसने फिर सब-को बुला लिया।

हरिण के पास आ जाने पर लघुपतनक बोला—मित्र, तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो ?

हरिण : मित्रो, मेरा नाम चित्रांग है। मैं व्याध के भय से भागा-भागा फिर रहा हूं।

कौआ : मित्र, इस निर्जन वन में तुम्हें किस व्याध का भय सता रहा है ?

हरिण : मित्र, कलिंग देश पर रुक्मांगद नाम का एक राजा राज्य करता है। वह आजकल दिग्विजय करने के लिए देश-देशान्तरों में भ्रमण कर रहा है। मैंने व्याधों के मुंह से अभी-अभी सुना है। कल प्रातःकाल वह इसी सरोवर के तट पर आकर अपना डेरा डालेगा। अतः हमें अभी से अपने बचाव का कोई न कोई उपाय अवश्य करना चाहिए।

कछुआ बोला—भैया, मैं तो किसी दूसरे तालाब में जाऊंगा।

चूहा और कौवा बोले—यह ठीक है।

बात काटते हुए हरिण बोला—ठीक तो है। पर कछुए का दूसरे तालाब में ले जाना भी कोई आसान काम नहीं। बेचारे के प्राणों पर आ बनेगी। इसकी रक्षा तो तालाब में ही हो सकती है। स्थल में तो मरण अनिवार्य है। अतः कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे हम अपनी रक्षा कर सकें। क्योंकि उपायों के सहारे ही गीदड़ ने मदमस्त हाथी को भी दलदल में ले जाकर मार दिया था।

कौआ बोला—कैसे?

हरिण ने कहा :

७

युक्ति से कार्य लो

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।

जो कार्य बल अथवा पराक्रम से पूर्ण नहीं हो पाता, उपाय द्वारा वह सरलता से पूर्ण हो जाता है।

ब्रह्मारण्य में कर्पूरतिलक नाम का हाथी रहता था। उसके हृष्ट-पुष्ट शरीर को देखकर सियार सोचने लगे कि यदि किसी उपाय से इसको मार दिया जाए तो इसके शरीर से कई मास का भोजन प्राप्त हो सकता है। कुछ समय पश्चात् एक बूढ़े सियार ने प्रतिज्ञा की कि मैं उपायों द्वारा इस हाथी को मार डालूंगा। तत्पश्चात् वह सियार हाथी के पास गया और बोला :

महाराज, कृपया मेरी बात सुनें।

हाथी : तू कौन है। कहां से आया है ?

सियार : महाराज, मैं सियार हूं। समस्त वनवासियों ने परस्पर सलाह करके मुझे आपके पास भेजा है और कहा है कि बिना राजा के समस्त वनखण्ड हमें नहीं सुहाता। अत: आपको इस वन का राजा चुना जाए और आज ही राज्याभिषेक कर दिया जाए। मैं आपसे नियत स्थान पर पधारने का अनुग्रह करने आया हूं। लग्न का समय बहुत ही निकट है अत: कृपया आप शीघ्र ही चलें।

सियार की इन लोभ-भरी भोली-भाली बातों में आकर हाथी उठकर उसी समय सियार के साथ भागा। मार्ग में वह बड़े गहरे दलदल में फंस गया। उसने दलदल से निकलने का बहुत प्रयत्न किया; पर जब न निकल सका तो सियार से बोला—मित्र, मैं तो दलदल में फंस गया। अब बताओ क्या करना चाहिए ?

गीदड़ हंसकर बोला—महाराज, मैं अब आपकी क्या सहायता कर सकता हूं! आप चाहें तो मेरी पूंछ पकड़ लें और दलदल से बाहर निकल आएं।

× × ×

इसीलिए चतुर मनुष्य को चाहिए कि जो कार्य बल से पूर्ण न हो सके उसे उपायों से पूर्ण करे।

हरिण की बात सुनकर भी कछुए को धैर्य न हुआ और वह भयभीत होकर बिना विचारे सबके साथ पैदल ही चलने लगा। उसी वन में कोई शिकारी शिकार की खोज में घूम रहा था। उसने कछुए को पृथ्वी पर चलता देखकर उठा

लिया और अपने घर की राह ली।

अपने मित्र को इस भांति मृत्यु के मुंह में जाते देखकर हरिण, कौए और चूहे को अत्यधिक संताप हुआ। वे लोग भी शिकारी और कछुए के पीछे-पीछे चलने लगे।

चूहा सोचने लगा कि भाग्य की कैसी महिमा है! पहला दुःख समाप्त ही नहीं हो पाता कि दूसरा सामने आकर खड़ा हो जाता है। इसी भांति सब एक ही हृदय से दैव को कोसने लगे। कुछ समय तक विचार करने और सोचने के उपरान्त लघुपतनक बोला—मित्रो, इस प्रकार विलाप करने से कुछ लाभ नहीं होगा। आओ, मिलकर मित्र को छुड़ाने का प्रयत्न करें।

तीनों ने लघुपतनक का कहना स्वीकार किया और चित्रांग (हरिण) एक सरोवर के तट पर पहुंचकर अपने को मृतवत् दिखाता हुआ लेट रहा। कौआ उसके शरीर पर अपनी चोंच मारने लगा। उसी मार्ग से जाते हुए शिकारी ने हरिण को देखते ही हाथ के कछुए को वहीं पृथ्वी पर सरोवर के तट पर रख दिया और कैंची लेकर हरिण की ओर बढ़ा। इतने में ही झाड़ी में छिपे हिरण्यक (चूहे) ने कछुए के बन्धन काट दिए और कछुआ उसी समय शीघ्रता से उछल-उछलकर सरोवर में घुस गया। उधर शिकारी को अपनी ओर आता देखकर हरिण भी एक ही छलांग में शिकारी के पंजे से बाहर हो गया। एक को छोड़कर दूसरे को पाने की लालसा करने वाला शिकारी अपनी करनी को कोसता हुआ शहर की ओर चल दिया। मन्थर आदि मित्र भी समस्त आपदाओं से मुक्त होकर वहीं सानन्द रहने लगे।

× × ×

कथा सुनने के उपरान्त राजपुत्र बोले—गुरुदेव, आपकी कृपा से इस नीतिपूर्ण कहानी को सुनकर हमें प्रसन्नता हुई।

विष्णुशर्मा : तुम्हारी ही भांति भगवान् सबको सुख और शान्ति प्रदान करें।

॥ पहला खंड समाप्त ॥

द्वितीय खण्ड

सुहृद्भेद

वर्धमानो महान् स्नेहो मृगेन्द्रवृषयोर्वने ।
पिशुनेनातिलुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ।।

सिंह और बैल की बढ़ती हुई मित्रता को लोभी और चुगलखोर सियार ने नष्ट कर दिया।

इस खण्ड की कथा-सूची—

१. नीति कुशल सियार
२. जिसका काम उसी को साजे
३. अपने काम से काम
४. स्वार्थ का संसार
५. कारण जानो
६. बिना विचारे जो करे
७. लोभ का फल
८. युक्ति से काम लो
९. अक्ल बड़ी कि भैंस
१०. संघ की शक्ति

राजपुत्रों ने विष्णुशर्मा को प्रणाम करके कहा—गुरुदेव ! हमने मैत्री के लाभ समझ लिए। अब कृपया आप हमें कोई दूसरा प्रसंग सुनाइए।

विष्णुशर्मा बोले—राजपुत्रो ! अब हम आप लोगों को मित्रों में भेद डालने वाली शेर, बैल और सियार की नीति-कथा सुनाते हैं।

राजपुत्र बोले—वह क्या कथा है गुरुदेव ?

विष्णुशर्मा बोले—सुनो…

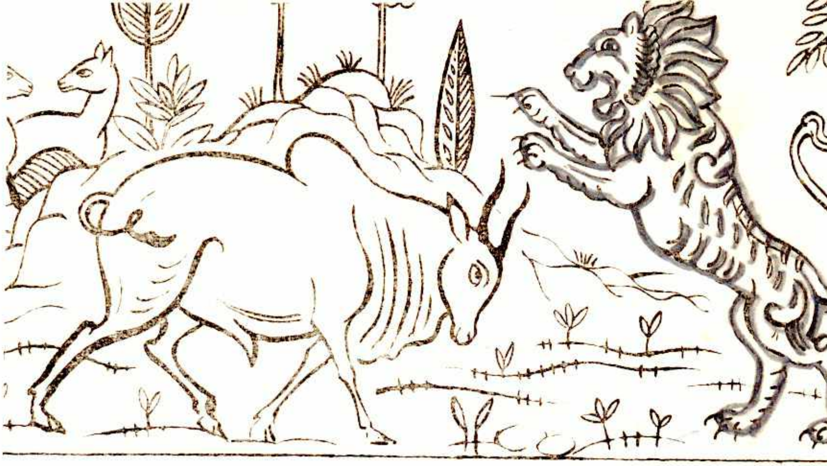

१

नीतिकुशल सियार

वर्धमानो महान् स्नेहो मृगेन्द्रवृषयोर्वने ।
पिशुनेनातिलुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ॥

सिंह और बैल की बढ़ती हुई मित्रता को
लोभी और चुगलखोर सियार ने नष्ट कर दिया।

दक्षिण दिशा में सुवर्णवती नाम की नगरी है। किसी समय इसी नगरी में वर्धमान नाम का धनी व्यापारी रहता था। उसके पास अतुल धन-राशि थी। फिर भी वह धनोपार्जन में लीन रहता था। एक दिन उसने नन्दक और संजीवक नाम के दो बैलों को अपनी गाड़ी में जोता और भांति-भांति का सामान उसपर लादकर काश्मीर की ओर चल दिया। अभी वह नगर से बाहर निकला ही था कि उसे उसका पुराना मित्र मिल गया। वर्धमान को इस प्रकार व्यापार के लिए जाते देखकर वह बोला—मित्र वर्धमान, तुम्हारे पास तो अपार

धन-राशि है, अब तुम और भी धन जमा करने में क्यों लगे हुए हो ?

वर्धमान बोला—मित्र, अपने को अपूर्ण समझने वाला व्यक्ति एक न एक दिन अवश्य पूर्ण हो जाता है, क्योंकि वह सदा प्रयत्नशील रहता है। इसके विपरीत अपूर्ण होते हुए भी अहंकारवश अपने को पूर्ण समझने वाला व्यक्ति दरिद्र हो जाता है। मनुष्य को कभी धन की अधिकता देख निश्चेष्ट नहीं होना चाहिए। जल की एक-एक बूंद से घड़ा भर जाया करता है। मैं भी बार-बार थोड़ा-थोड़ा धन उपार्जित करूंगा। तो एक दिन यही अल्प धन अपार धन बन जाएगा।

इस प्रकार अपने मित्र को समझाकर वह व्यापारी आगे बढ़ा। मार्ग में सुदुर्ग नाम के निविड़ वन में पहुंचकर संजीवक बैल गिर पड़ा और उसकी एक टांग टूट गई।

संजीवक के अचानक गिर पड़ने से वर्धमान को बड़ा दुःख हुआ। इस विघ्न के कारण वह वहीं जंगल में ठहर गया और विचार करने लगा :

चतुर व्यक्ति चाहे किसी भी चतुरता से इधर-उधर जाकर पुरुषार्थ करे, उसका अच्छा या बुरा फल तो विधाता के हाथ में है। अब क्या किया जाए ? उसी समय उसे ध्यान आया :

आपत्ति में कभी भी घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि घबराना ही किसी भी काम में सबसे बड़ा विघ्न है। अब तो जैसे भी हो सके उपाय करना चाहिए। यह विचार कर वह संजीवक को वहीं छोड़कर पास के धर्मपुर नाम के शहर में गया। वहां से एक और हृष्ट-पुष्ट बैल को ले आया। उसे गाड़ी में जोतकर वर्धमान तो अपने व्यापार के लिए काश्मीर की ओर चला गया

और इधर संजीवक जैसे-तैसे अपने तीन पैरों पर खड़ा हुआ और स्वतन्त्रतापूर्वक वन में विचरने लगा। वन में उसके भाग्य ने उसकी सहायता की। स्वेच्छापूर्वक खाने-पीने के कारण वह बहुत बलवान् हो गया।

उसी वन में पिंगलक नाम का सिंह राज्य करता था। दमनक और करटक नाम के दो उसके मन्त्री के पुत्र थे। ये दोनों प्रायः पिंगलक के साथ रहते। एक दिन पिंगलक पानी पीने की इच्छा से यमुना नदी की ओर गया। वहां उसने मेघ-गर्जन के समान किसीका शब्द सुना। वह विचार करने लगा—यह किसकी गर्जना है ? उसे इस गर्जना से इतना भय हुआ कि उसका रंग फीका पड़ गया और वह बिना पानी पिए ही वापस लौट आया।

पास ही खड़ा हुआ दमनक यह सब देख रहा था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अपने साथी करटक से बोला—न जाने क्यों आज महाराज पिंगलक बिना जल पिए ही नदी से वापस चले आए। अब उन्हें देखो, कितने उदास बैठे हैं।

अरे भाई ! छोड़ो भी इन बातों को, हमारी बला से। हम तो सेवक-वृत्ति से ही दूर रहेंगे। यह भी कोई जीवन है ? देखो भी, सेवक कितना मूर्ख होता है। सदा उन्नति पाने के लिए अपना मस्तक झुकाए रहता है। सुख भोगने के लिए दुःखों के पहाड़ ढोता है। स्वयं जीवित रहने के लिए अपने प्राणों तक की बलि दे देता है। करटक ने उत्तर दिया :

कुछ भी हो ! जिसे एक बार स्वामी स्वीकार कर लिया, उसकी सेवा करना, उसकी कुशल-क्षेम पूछना हमारा प्रथम कर्तव्य है।

यह हमारा नहीं, राजा के मन्त्री का कर्तव्य है। हम जिस

काम के लिए हैं वही करें, अन्यथा हमारा वही हाल होगा जो कील उखाड़ने वाले बन्दर का हुआ था।

दमनक बोला—भाई, यह कथा मुझे भी सुनाओ।

करटक बोला—सुनो……

२

जिसका काम उसीको साजे

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्तुमिच्छति।
स भूमौ निहतः शेते कीलोत्पाटीव वानरः॥

जो दूसरे के कर्तव्य कार्य को स्वयं करके अनधिकार चेष्टा करता है वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

मगध देश में धर्मारण्य के पास शुभदत्त नाम का कायस्थ बौद्ध संन्यासियों के निवास के लिए विहार बनवा रहा था। विहार के आसपास मकान बनाने की लकड़ियां पड़ी थीं। उन्हींमें एक लकड़ी को बीच से थोड़ा-सा चीरकर उसे अलग-अलग रखने की इच्छा से बढ़ई ने उसमें एक कील लगा दी थी। इतने में ही जंगल से खेलता-कूदता एक बन्दरों का समूह उधर से निकला। इस समूह में से एक बन्दर उस लकड़ी पर चढ़ गया और उसके बीच की कील दोनों हाथों से पकड़कर निकालने लगा। बड़े प्रयत्न से उसने कील को निकाल लिया। कील के निकलते ही बन्दर का पिछला भाग उन दोनों खण्डों के बीच में फंस गया और वह उसमें दबकर मर गया।

जिस काम की पूरी पहचान न हो उसमें दखल नहीं देना चाहिए।

करटक ने आगे कहा—दूसरे का काम करना तो हानिकारक है ही, यदि उस काम से स्वामी का लाभ होता हो तब भी हानिकारक ही है।

दमनक बोला—वह कैसे ?

करटक बोला—सुनो······

३

अपने काम से काम

पराधिकारचर्चां यः कुर्याद् स्वामिहितेच्छया ।
स विषीदति चीत्काराद् गर्दभस्ताडितो यथा ॥

स्वामी की भलाई की कामना से भी जो अनधिकार चेष्टा करता है वह पिटने वाले गधे की तरह दुःखी होता है।

बनारस में कर्पूरपटक नाम का धोबी रहता था। उसके पास एक गधा और एक कुत्ता था। दोनों उसके आंगन में बंधे रहते। एक रात्रि को वह गाढ़ निद्रा में सो रहा था कि उसके घर में एक चोर आ गया। कुत्ता और गधा दोनों ने चोर को आते देखा, पर जब कुत्ता बोला ही नहीं तो गधा उसे फटकारते हुए बोला :

मित्र, चोर आ गया और तुम चुपचाप आराम से बैठे हो। तुम्हें नहीं मालूम कि चोर के आने पर तुम्हारा पहला कर्तव्य है कि तुम शोर मचाकर स्वामी को जगा दो।

कुत्ता बोला—भाई, तुम मेरे कर्तव्य की चिन्ता न करो। क्या तुम्हें मालूम नहीं, मैं दिन-रात इसके घर की रक्षा करता हूं इसलिए बहुत दिनों से कोई चोरी नहीं हुई। आज यह मेरे

उपकार भूल गया और भरपेट खाना भी नहीं देता।

गधा क्रोध में आकर बोला—मूर्ख, ऐसा सेवक भी किस काम का, जो काम के समय स्वामी से मांगना प्रारम्भ कर दे।

तू समय पड़ने पर स्वामी-कार्य की उपेक्षा करता है। मैं तो स्वामी का सच्चा सेवक हूं। मैं अपने स्वामी को अवश्य जगाऊंगा।

यह कह गधे ने तार-स्वर से चिल्लाना शुरू किया। नींद खुल जाने के कारण स्वामी को गधे पर बहुत क्रोध आया। चोर तो भाग गए पर गधे को इतनी मार पड़ी कि वह अधमरा हो गया।

इसलिए कहते हैं अपने काम से काम रखो। दूसरे के काम में दखल न दो।

× × ×

धोबी और गधे की कहानी सुनाकर करटक बोला—तभी तो मैं कहता हूं कि हमें दूसरे के काम में हाथ नहीं डालना चाहिए। पिंगलक का अवशिष्ट भोजन तो हमें मिल ही जाता है, फिर हम क्यों किसी बात की चिन्ता करें।

दमनक : केवल भोजन ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है ? जिसका खाते हो, उसकी तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं ?

करटक : हम कौन से पिंगलक के प्रधानमन्त्री हैं ! हम तो उपप्रधान हैं। जब वह ही हमें नहीं पूछता, तो हम ही क्यों उसकी चिंता करें।

दमनक : तुम नहीं जानते करटक ! स्वामी, स्त्री और लता अपने निकट रहने वाले को ही अपना लेते हैं।

करटक : अस्तु, तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? तुम करना क्या

चाहते हो ?

दमनक : सुनो, हमारा राजा आज भयभीत है। इसकी आकृति नहीं देखते ? चेहरे का रंग उतर गया है।

करटक : तो तुम क्या करोगे ?

दमनक : मैं राजा के पास जाकर राजनीति के अनुसार उसकी यह चिन्ता दूर करूंगा।

करटक : फिर क्या ?

दमनक : फिर, फिर वह हमारे वश में हो जाएगा, और हमारे दिन आनन्दपूर्वक कटने लग जाएंगे।

करटक : यदि ऐसा है तो जाओ, भगवान् तुम्हारा कल्याण करे।

चतुर दमनक करटक से विदा लेकर पिंगलक की राजसभा की ओर बढ़ चला। वहां उसने देखा—भालू, चीता, हाथी और न जाने कितने पशु उसके दरबार में बैठे हैं। दमनक को आते देखकर पिंगलक ने द्वारपाल को संकेत से कहा कि उसे बिना रोक-टोक आने दिया जाए। दमनक को राजा ने सभा में समुचित स्थान दिया और फिर बोला :

मन्त्रीपुत्र ! आज बहुत समय बाद आपने राज-सभा में दर्शन दिए !

दमनक : महाराज, यदि आपको मुझसे कोई कार्य नहीं तो समय पर आपकी सेवा में उपस्थित होना मेरा तो परम धर्म है। मैं क्षुद्र जीव हूं तो क्या हुआ ? एक छोटा-सा तिनका भी समय पर काम आता है। फिर मैं तो हाथ-पैर वाला चलता-फिरता सजीव प्राणी हूं।

पिंगलक : तुम यह क्या कहते हो बेटा, तुम तो हमारे भूत-

पूर्व मन्त्री के सुपुत्र हो, साथ ही नीतिज्ञ हो ! तुम्हें यहां आने से किसने रोका ? मैं तो सहर्ष तुम्हारी सेवा स्वीकार करना चाहता हूं।

दमनक ने देखा स्वामी इस समय मुझपर अत्यधिक प्रसन्न है। अतः वह बोला :

स्वामी, मैं आपसे एकान्त में कुछ बातें पूछना चाहता हूं। आप आज्ञा करें तो……।

पिंगलक ने सबको एक ओर कर दिया और दमनक को अपने पास बुलाकर कहा :

कहो मन्त्री-पुत्र !

दमनक : महाराज, मैं पूछना चाहता हूं कि आप यमुना-तट पर पहुंचकर भी बिना पानी पिए वापस क्यों लौट आए ?

पिंगलक : बेटा, यह तुम्हारा भ्रम है। कुछ भी तो नहीं था !

दमनक : स्वामी, मैं आपका सेवक हूं। आप यदि मुझे बता देंगे तो मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूंगा। हां यदि आप न बताना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

पिंगलक गम्भीर होकर सोचने लगा। फिर कुछ समय उप-रान्त बोला :

तुम्हारा विचार ठीक है ! मैं तुम्हें बता रहा हूं, पर यह बात गुप्त रहनी चाहिए। इस वन में अब कोई महान् बलशाली पशु आ गया है। उसकी हुंकार मेघ-गर्जन के समान है। जिसकी हुंकार ही इतनी डरावनी है वह स्वयं कितना बलवान् होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अतः अब मैंने निश्चय कर लिया है कि शीघ्र ही इस वन को छोड़कर किसी

दूसरे वन में चला जाऊं।

दमनक : महाराज, उस भयानक गर्जना को मैंने भी सुना है। मैंने अपने जीवन में तो ऐसी गर्जना सुनी नहीं। पर महाराज आप वन छोड़कर क्या करेंगे ?

पिंगलक : वन छोड़कर युद्ध की तैयारी करूंगा और इस-पर विजय प्राप्त करूंगा। मैं अपने शत्रु को जीवित नहीं देख सकता।

दमनक : महाराज, वह मन्त्री योग्य नहीं होता जो स्थान छुड़ाकर फिर युद्ध करने की मन्त्रणा दे। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं ही इस भार को अपने कन्धों पर ले लूं और उस बलवान् से आपकी संधि करा दूं।

पिंगलक : यदि तुम ऐसा कर सको तो मैं तुम्हें प्रधानमन्त्री का पद दे दूंगा।

इतना कहकर पिंगलक ने बहुत-सा पुरस्कार देकर दमनक और करटक को विदा किया।

मार्ग में करटक दमनक से बोला—दमनक, स्वामी का कार्य किए बिना इतना अधिक पुरस्कार लेकर तुमने अच्छा नहीं किया।

दमनक मुस्कराकर बोला—भाई तुम चुप भी रहो। मैं स्वामी के भय का कारण जानता हूं। वह हुंकार बैल की थी। तुम जानते ही हो कि बैल हमारा खाद्य पदार्थ है। फिर उससे कैसा भय ?

करटक : यदि तुम यह जानते थे तो तुमने महाराज को यह सब पहले ही क्यों नहीं बता दिया ?

दमनक फिर हंसा और बोला—भाई, तुम तो निरे भोले

हो ! यदि हम महाराज को यह पहले ही बता देते तो हमें इतना पुरस्कार कैसे प्राप्त होता ? स्वामी को कभी भी निश्चिन्त नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से सेवक का वही हाल होता है जो दधिकर्ण का हुआ था।

करटक : वह क्या ?

दमनक : सुनो......

४

स्वार्थ का संसार

निरपेक्षो न कर्त्तव्यो भृत्यैः स्वामी कदाचन ।

सेवक कभी भी स्वामी को निरपेक्ष न करे।

उत्तर दिशा में अर्बुदशिखर नाम के पर्वत पर दुर्दान्त नाम का सिंह रहता था। जिस गुहा में वह रहता था, उसीमें एक चूहा भी रहता था। शेर जब आहार करके उस गुहा में विश्राम करता तो यह चूहा अपने बिल से निकलता और सिंह के केशों को कुतरा करता। शेर जब सोकर उठता तो अपने केशों को कुतरा देखकर उसे बहुत क्रोध आता। पर महान् पराक्रमशाली होने पर भी वह चूहे का कोई भी अपकार नहीं कर सकता था। अन्त में एक दिन चूहे को घूमते देखकर उससे न रहा गया। उसने चूहे को पकड़ने के लिए अपना पंजा बढ़ाया। पर चूहा उसका पंजा बढ़ने से पहले ही बिल में जा चुका था। वह खीज उठा। कुछ समय बाद उसने सोचा— छोटे शत्रु का महान् पराक्रमी भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसके नाश के लिए उसके समान ही कोई सैनिक होना चाहिए।

यह विचार आते ही वह चूहे के लिए एक बिलाव को ढूंढ़ने निकला। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह एक ग्राम में पहुंच गया। वहां उसने बिलाव को बुलाया। पहले तो बिलाव भय से कांपने लगा, पर सिंह का आश्वासन पाकर वह उसके पास गया। सिंह ने अपनी मीठी-मीठी बातों से बिलाव को फुसलाया और फिर उसे अपनी गुहा में ले गया।

अब सिंह नित्य उसे ताज़ा मांस लाकर देता और आदर-पूर्वक खिलाता। उससे बड़ी मीठी-मीठी बातें करता। इधर बिलाव को देखकर चूहे ने भी अपने बिल से निकलना बन्द कर दिया। सिंह को अब चूहे का भय न रहा और वह निश्चिन्त होकर सोने लगा। पर सिंह यह जानता था कि चूहा अब भी बिल में है। क्योंकि वह कभी-कभी बिल में शब्द किया करता था। जब-जब चूहा शब्द करता, सिंह बिलाव को त्यों-त्यों और अधिक स्वादिष्ठ मांस लाकर दिया करता।

एक दिन दुःख से अधिक व्याकुल होकर चूहा अपने बिल से निकला। उसे देखते ही बिलाव ने उसे मार डाला और खा लिया। इसी तरह कई दिन बीत गए। पर सिंह ने चूहे का जब शब्द नहीं सुना तो वह समझ गया कि चूहे को बिलाव ने खा लिया। सिंह ने अब बिलाव को मांस देना बन्द कर दिया। यहां तक कि बिलाव भूखों मरने लगा और गुहा छोड़-कर भाग गया।

× × ×

दमनक : इसीलिए मैं कहता हूं कि सेवक को कभी निरपेक्ष नहीं करना चाहिए।

तदुपरान्त दमनक और करटक संजीवक के पास गए।

दमनक के इशारे से करटक एक वृक्ष के नीचे अकड़कर बैठ गया। दमनक संजीवक से बोला :

ओ बैल ! मेरी ओर देख, मैं महाराजाधिराज पिंगलक की ओर से वन की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया हूं। वह देखो, हमारा सेनापति करटक तुम्हें आज्ञा देता है कि तुम शीघ्र ही हमारे वन की सीमा से बाहर चले जाओ। हमारे स्वामी ज़रा-ज़रा-सी बातों पर गरम हो जाते हैं। क्रोध में क्या कर बैठें, कोई कुछ कह नहीं सकता।

यह सुनते ही संजीवक करटक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला :

सेनापते !

करटक : ओ बैल ! यदि तू इस वन में रहना चाहता है तो चलकर हमारे स्वामी को प्रणाम कर।

संजीवक : स्वामी ! कौन स्वामी ?

करटक : हमारा स्वामी महाराजाधिराज सिंह पिंगलक। उसके पास ही तुम्हें जाना होगा।

संजीवक के होश उड़ गए। वह डरते-डरते बोला :

सेनापति, पहले मुझे अभय वचन दो।

करटक : ओ मूर्ख बैल, तू इतना क्यों डरता है ! वह तो महापराक्रमी सिंह है। तुझ जैसे तृणाहारी जीव को मारना तो वह अपना तिरस्कार समझता है। मूर्ख बैल ! तेरी यह आशंका तो नितान्त निर्मूल है। सिंह यदि गर्जता है तो मेघ-गर्जन के प्रत्युत्तर में। वह कभी भी सियारों का शब्द सुनकर थोड़े ही गर्जन करता है।

इतना समझाकर दोनों संजीवक को अपने साथ ले गए।

पिंगलक के दरबार के निकट पहुंचकर उन्होंने संजीवक को दूर ही एक ओर खड़ा कर दिया और स्वयं पिंगलक के पास गए।

पिंगलक : मन्त्री, तुमने उसको देखा ? वह कौन था ?

दमनक : हां, महाराज, हमने उसे देखा। जैसा आपने सोचा था वह वैसा ही निकला। पर आप शान्तचित्त होकर बैठ जाएं और मेरी बात सुनें। केवल शब्द से ही भयभीत न हों, क्योंकि शब्द-मात्र से ही नहीं डरना चाहिए। उसका कारण जानना चाहिए। कारण जानने पर कुट्टिनी को सम्मान प्राप्त हुआ था।

पिंगलक : वह क्या कथा है ?

दमनक : सुनो महाराज !···

५

कारण जानो

शब्दमात्रान्न भेतव्यं ज्ञातव्यं शब्दकारणम् ।

केवल शब्द सुनकर ही भयभीत न होना चाहिए। उसका कारण भी जानना चाहिए।

श्री नाम के पर्वत पर ब्रह्मपुत्र नाम का एक नगर था। इस पर्वत की चोटी पर घण्टाकर्ण नाम का राक्षस रहता है। यह जनश्रुति उस समय प्रचलित थी। कारण यह था कि किसी समय एक चोर घण्टा चुराकर उस मार्ग से जा रहा था कि मार्ग में उसे भेड़िये ने मारकर खा लिया। उसके घण्टे को

बन्दरों ने उठा लिया। बन्दर उस घण्टे को बारी-बारी से बजाते रहते। मरे हुए आदमी का ढांचा देखकर और घण्टे का स्वर सुनकर नगरवासियों ने अनुमान लगाया कि अवश्य कोई राक्षस इस शिखर पर रहता है। वह मनुष्यों को खाता है और घण्टा बजाता है।

प्रतिक्षण घण्टे का स्वर सुनकर करला नाम की कुट्टिनी ने विचार किया कि कहीं पर्वत पर रहने वाले बन्दर ही तो इस घण्टे को नहीं बजाते? कुछ विचार करने के बाद वह राजा के पास गई और बोली:

महाराज, यदि आप कुछ धन व्यय करें तो मैं उस राक्षस को वश में कर सकती हूं।

राजा ने उसे प्रचुर धन दिया। वह पर्वत की चोटी पर गई। वहां एक सुन्दर मण्डप बनाया। गणेश आदि का पूजन करवाया और फिर बन्दरों के लिए फल लेकर वह पर्वत के शिखर पर चढ़ गई। वहां फल बिखेर दिए। बन्दर फलों की ओर झपटे और वह घण्टा लेकर वापस चल दी।

'करला ने घण्टाकर्ण को वश में कर लिया है,' यह जनश्रुति नगर में फैल गई और उसका आदर होने लगा।

× × ×

दमनक: महाराज, इसलिए आप उससे मित्रतापूर्वक बात करें। भयभीत न हों।

इतना कहकर उन्होंने संजीवक को पिंगलक के सम्मुख उपस्थित किया और उन दोनों की मित्रता करा दी। संजीवक भी सिंह का मित्र बनकर वहीं सुख-सहित रहने लगा।

एक दिन पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण वहां आया। उसका

अतिथि-सत्कार करने के उपरान्त पिंगलक भोजनादि की व्यवस्था करने के लिए संजीवक के साथ वन की ओर निकल पड़ा।

संजीवक : मित्र, आज मारे हुए हरिणों का मांस कहां है ?

पिंगलक : वह तो दमनक और करटक ही जानते हैं।

संजीवक : उनसे पूछिए भी कि है भी या नहीं।

पिंगलक : मित्र, होगा नहीं, उन्होंने खा लिया होगा।

संजीवक : तो क्या वे लोग अकेले ही इतना मांस खा गए होंगे ?

पिंगलक : कुछ खा लिया होगा, कुछ बांट दिया होगा और कुछ फेंक दिया होगा।

संजीवक : मित्र यह तो अनुचित है। मन्त्री कमण्डलु की भांति होना चाहिए। बिना विचारे व्यय करने वाले कुबेर का भण्डार भी एक दिन समाप्त हो जाता है।

संजीवक की बात सुनकर स्तब्धकर्ण भी पिंगलक को समझाते हुए बोला :

भाई, चिरकाल से कार्यरत सेवक के हाथ में कोष नहीं देना चाहिए। इनको तो सन्धि-विग्रह के कार्यों में लगाओ। कोषाध्यक्ष के कार्य के लिए तो यह तृणाहारी संजीवक ही योग्य है।

स्तब्धकर्ण की इस सलाह पर पिंगलक ने संजीवक को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर दिया। अब दमनक और करटक की स्वतन्त्रता और स्वार्थपरायणता समाप्त हो गई। वे सोचने लगे कि अब क्या किया जाए ? उनके आश्रित भाई-बन्धुओं का सुख भी अब छिन गया। करटक ने दुःखी होकर पूछा :

मित्र, अब क्या करना चाहिए ?

दमनक : यह तो अपने किए का ही फल है। इसके लिए किसी दूसरे को दोष देना व्यर्थ है। वीर विक्रम और साधु भी तो अपने किए से दु:खी हुए।

करटक : वीर विक्रम की क्या कथा है !

दमनक : सुनो······

६

बिना विचारे जो करे

प्रायः समापन्नविपत्तिकाले,
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ।

विपत्ति के समय महात्माओं की बुद्धि भी मलिन हो जाती है।

एक समय सिंहलद्वीप में बलशाली जीमूतवाहन नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन किसी पोतस्थित वणिक् के मुंह से उसने सुना कि चतुर्दशी के दिन समुद्र में से एक कल्पवृक्ष प्रकट होता है, जिसपर रत्नों से जटित एक पलंग बिछा रहता है। उसी पलंग पर अपनी कोमल उंगलियों से वीणा बजाती हुई एक कन्या दिखाई देती है।

यह बात सुनकर जीमूतवाहन को महान् आश्चर्य हुआ। वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचा। ठीक चतुर्दशी वाले दिन राजा ने भी वीणा बजाते हुए उस कन्या को देखा। वह कन्या आधी तो जलमग्न थी और आधी जल से बाहर। राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। साहसी राजा ने कन्या तक पहुंचने की लालसा से समुद्र में गोता लगाया।

राजा बहुत समय तक जल में रहने के बाद कनकपत्तन नाम के नगर में पहुंचा। उसे और अधिक आश्चर्य हुआ जब उसने वहां भी उसी कन्या को पलंग पर बैठकर वीणा बजाते देखा। कन्या के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर राजा वहीं मूर्तिवत् खड़ा रहा।

कुछ ही समय बीता था कि कन्या की एक सहेली राजा के पास आई। राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा :

परिचारिके ! पलंग पर बैठकर मधुर वीणा बजाने वाली यह कौन कन्या है ?

परिचारिका : यह विद्याधारियों के राजा कन्दर्पकेलि की पुत्री है, रत्नमंजरी इसका नाम है। इसकी प्रतिज्ञा है कि जो सर्वप्रथम कनकपत्तन में आकर मुझे देखेगा, वही मेरा पति होगा। मैं उसीसे जैसे भी होगा विवाह अवश्य करूंगी।

सेविका राजा को रत्नमंजरी के पास ले गई। दोनों ने गान्धर्व विवाह कर लिया और राजा वहीं सानन्द रहने लगा। एक दिन रत्नमंजरी ने कहा—महाराज, यहां पर आप जितनी वस्तुएं देखते हैं वे सब आपके ही उपभोग की हैं। परन्तु इस विद्याधरी नाम की स्वर्ण-रेखा को कभी भूलकर भी न छूना।

रत्नमंजरी की बात सुनकर राजा की उत्सुकता बढ़ गई। वह सोचने लगा—इस स्वर्ण-रेखा में ऐसी कौन-सी विशेषता है जो रत्नमंजरी ने इसे छूने तक के लिए मना किया। उसका कौतूहल बढ़ता ही गया और यहां तक बढ़ गया कि राजा ने उस स्वर्ण-रेखा को छू लिया। राजा ने उसे केवल चित्रमात्र समझा था। पर ज्यों ही उसने उसे छूआ, रेखा ने पाद-प्रहार

किया और राजा अपने देश में आकर गिरा। दुःखी होकर अब वह देशान्तरों में घूमने लगा।

दमनक आगे बोला—अब साधु की भी कहानी सुनाता हूं।

७

लोभ का फल

अतिलोभो न कर्त्तव्यः।

बहुत लोभ नहीं करना चाहिए।

एक बार कोई वणिक् अपने घर से निकल पड़ा। वह मलयगिरि पर पहुंचा और वहां बारह वर्ष तक व्यापार करता रहा। एक दिन वह अपनी सारी सम्पत्ति लेकर इस नगर में चला आया। यहां वह जिस स्थान पर ठहरने गया, वह एक वेश्या का था। वेश्या के आंगन में एक कठपुतली थी जिसके मस्तक पर एक बहुमूल्य मणि सुशोभित थी। लोभी बनिये का मन उस मणि को लेने के लिए ललचाया। वह रात को उठा और उस कठपुतली की मणि को निकालने लगा। अचानक उसी समय कठपुतली ने उसे अपनी दोनों भुजाओं से जकड़ लिया। कठपुतली ने उसे इतनी ज़ोर से पकड़ा कि वह चिल्लाने लगा। उसकी चीख सुनकर वेश्या भी वहीं आ गई और बोली—

श्रीमान् जी, आप मलयगिरि से आ रहे हैं। जितना भी धन आपके पास हो, रख दें। तभी यह कठपुतली आपको छोड़ेगी।

वेश्या ने उसका सारे का सारा धन वहीं रख लिया और

तब उसे छोड़ा।

अब बेचारा वह निर्धन होने के कारण साधु होकर भिक्षाटन करता है।

× × ×

दमनक : अतएव मैं कहता हूं कि स्वयं ही अपराध कर के पछताने से कुछ भी लाभ नहीं। मैंने अब इसका उपाय भी सोच लिया है। जिस प्रकार मैंने शेर और बैल की मैत्री कराई उसी प्रकार भंग भी कर सकता हूं।

करटक : मित्र, इनकी मैत्री अब बहुत गहरी हो गई है। उसे भंग करना सहज काम नहीं।

दमनक : तुम चिन्ता न करो। जो काम पराक्रम अथवा किसी दूसरी विधि से नहीं हो सकता वह उपायों द्वारा हो सकता है। इन्हीं उपायों के बल पर तो कौए की स्त्री ने सांप को मरवा डाला।

करटक—यह कैसे हुआ ?

दमनक—सुनो······

८

युक्ति से काम लो

उत्पन्नेष्वपि कार्येषु मतिर्यस्य न हीयते।

संकट उपस्थित होने पर भी जिसकी बुद्धि विचलित नहीं होती, वह कार्य में सफल हो जाता है।

किसी वृक्ष पर एक कौआ सपत्नीक रहता था। वह बहुत

पुराना वृक्ष था। उसके खोखल में एक सर्प भी रहने लगा। एक बार कौए के बच्चे को सांप ने खा लिया। कौआ और उसकी पत्नी को इस घटना से बहुत दुःख हुआ। पर वे सर्प का कुछ बिगाड़ न सके। क्योंकि वह उनसे अधिक बलवान् था।

कुछ समय बाद कौए की पत्नी फिर से गर्भवती हुई और कौए से बोली : स्वामी, अब हमें शीघ्र ही यह वृक्ष छोड़ देना चाहिए। क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पुत्रों के जन्म लेते ही यह दुष्ट उन्हें अवश्य खा जाएगा। मुझे तो अभी से उनकी रक्षा की चिन्ता सता रही है। शास्त्रों में कहा भी है—

ससर्पे च गृहे वासः मृत्युरेव न संशयः ।

सर्प वाले गृह में रहना मृत्यु का आह्वान करने के बराबर है।

कौआ : तुम भय मत करो। अभी तक तो मैं उसके अपराधों को क्षमा करता आया हूं, पर इस बार मैं कभी भी क्षमा नहीं करने का।

काकी हंसते हुए बोली : उससे आप लड़ेंगे ? आपको नहीं मालूम सर्प कितना बलवान् है।

कौआ : ऐसी शंका करना व्यर्थ है। बुद्धिबल से बड़े-से बड़े शत्रु पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो सुनो मैं तुम्हें सिंह और खरगोश की कहानी सुनाता हूं।

काकी—सुनाइए !

६

अक्ल बड़ी कि भैंस

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।

जिसके पास बुद्धिबल है वही बलवान् है।
अन्यथा बुद्धिहीन बल से क्या लाभ ?

मन्दर पर्वत पर दुर्दान्त नाम का सिंह रहता था। सारे पर्वत पर उसके समान कोई दूसरा बलवान् पशु नहीं था। इसलिए वह मनमाने ढंग से पशुओं को मारकर खा जाया करता था। जितने पशु वह खा सकता था उससे अधिक वह वध कर देता था।

पशुओं की इस बेकार बलि को देखकर पर्वत के पशु भय से कांप उठे। उन्होंने मन्त्रणा की और जाकर सिंह से निवेदन किया कि आप व्यर्थ में इतने पशुओं की हत्या न किया करें। हम स्वयं आपकी सेवा में एक पशु नित्य भेज दिया करेंगे।

उसी दिन से नियमानुसार एक-एक पशु नित्य सिंह के पास उसके भोजन के लिए जाने लगा। कुछ समय बाद किसी बूढ़े खगरोश की बारी आई। वह सोचने लगा—यदि मैं सिंह से अपनी रक्षा की प्रार्थना करूं तो वह स्वीकार करने वाला नहीं। फिर उससे प्रार्थना करना ही व्यर्थ है।

खरगोश निर्धारित समय से बहुत देर बाद पहुंचा। इतनी देर बाद, और वह भी छोटे-से बूढ़े खरगोश को आता देखकर सिंह जल-भुनकर खाक हो गया।

सिंह : दुष्ट ! तू इतनी देर से क्यों आया ?

खरगोश : महाराज क्षमा करें। इसमें मेरा कोई भी अपराध नहीं।

सिंह : तो इतनी देर से आने का कारण ?

खरगोश : महाराज, रास्ते में मुझे एक और सिंह मिल गया था। कहने लगा—तू किसके पास और क्यों जा रहा है ? मैंने आपका नाम बताकर कहा—वे हमारे राजा हैं। मैं उनके भोजन के लिए जा रहा हूं। फिर क्या था, उसने मुझको बहुत-से अपशब्द कहे और कहा कहां है वह तुम्हारा राजा, उसे बुलाकर लाओ; मैं उसे अभी पराजित करके स्वयं राजा बनूंगा।

इतना सुनते ही सिंह की आंखें अंगारे बरसाने लगीं। वह बोला : चल, मैं वहीं चलता हूं। उसको मारकर ही मैं तुझे खाऊंगा।

सिंह खरगोश के साथ-साथ हो लिया। कुछ दूर एक गहरे कुएं पर पहुंचकर खरगोश ने सिंह से कहा :

महाराज, वह इसीमें रहता है। आप उसे स्वयं देख लें। उस गहरे कुएं में अपनी छाया देखकर सिंह क्रोध में भरकर बहुत ज़ोर से गरजा। कुएं में से भी उसकी प्रतिध्वनि निकली। सिंह ने उसे अपने प्रतिपक्षी का गर्जन समझा। और वह उसे मारने को कुएं में कूद पड़ा और स्वयं मर गया।

कौआ : इसीलिए तो मैं कहता हूं कि जिसके पास बुद्धिबल है वही बलवान् है।

× × ×

काकी : यह तो मैंने सुन लिया। पर यह बताओ अब क्या करना चाहिए ?

कौआ : पास के सरोवर पर एक राजपुत्र नित्यप्रति स्नान करने आता है। स्नान के पूर्व वह तालाब के किनारे पड़ी शिला पर वस्त्र एवं अलंकार आदि उतारकर रख देता है। तुम वहां से उसका स्वर्णहार अपनी चोंच में उठा लाओ और इस सर्प के खोखल में डाल दो। वह स्वर्णहार ही सर्प की जान ले लेगा। अगले दिन प्रातःकाल काकी ने यही किया। हार के पीछे भागते-भागते रक्षक लोग जब खोखल के पास आए तो वहां सर्प को देखकर उन्होंने उसे मार डाला।

दमनक : इसीलिए मैं कहता हूं जो कार्य उपायों द्वारा हो सकता है वह कार्य केवल पराक्रम से नहीं हो सकता। तुम विश्वास करो, मैं बुद्धिबल से ही संजीवक और पिंगलक की मित्रता नष्ट कर दूंगा।

तब दमनक पिंगलक के पास गया। प्रणाम करके बोला : महाराज क्षमा करें, आज मैं बिना बुलाए ही आपसे कुछ निवेदन करने आया हूं।

पिंगलक : कहो भी पुत्र ! क्या कहना चाहते हो ?

दमनक : महाराज, आपको हो सकता है अचानक विश्वास न हो, पर जो कुछ मैं कहता हूं वह सत्य कहता हूं।

पिंगलक : मन्त्रीपुत्र, मैं आज से नहीं वर्षों से तुम्हारा विश्वास करता आया हूं। फिर आज तुम्हें कैसे यह शंका हुई ?

दमनक : महाराज, मुझपर आपका विशेष अनुग्रह है, तभी तो मैं अब सत्य-सत्य बताता हूं। बात यह है कि आपने यह ठीक नहीं किया कि सब मन्त्रियों के हाथ से कार्य छीन लिए और केवल संजीवक को उनका अधिष्ठाता बना दिया। आज उसीका यह फल है कि संजीवक अब आपको इस वन का

राजा नहीं देख सकता। वह आपकी हत्या का षड्यन्त्र रच रहा है।

पिंगलक : वह मुझे मारना चाहता है ?

दमनक : महाराज, केवल चाहता ही नहीं, उसने इसका प्रबन्ध भी कर लिया है।

इतना सुनना था कि पिंगलक भयभीत होकर सोचने लगा—अब क्या किया जाए ? संजीवक बहुत बलशाली है। उससे युद्ध करना कोई आसान काम नहीं।

पिंगलक को चिन्ताग्रस्त देखकर दमनक बोला : महाराज, आप विशेष चिन्ता न करें। दमनक के रहते आपका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता।

पिंगलक : तो क्या किया जाये ? संजीवक को वन से निकाल दिया जाए ?

दमनक : यह तो बड़ी भारी भूल होगी। वह बाहर जाकर फिर हमें परास्त कर सकता है।

पिंगलक : इन सब बातों से पहले हमें सोचना चाहिए कि वह हमारा बिगाड़ क्या सकता है ?

दमनक : किसीके सहायक एवं साथियों को बिना जाने यह निश्चय हो ही नहीं सकता। आपको यह सुनकर महान् आश्चर्य होगा कि एक टिट्टिभ ने महासागर को व्याकुल कर दिया था।

पिंगलक—कैसे ?

दमनक—सुनिए······

१०

संघ की शक्ति

अङ्गाङ्गिभावमज्ञात्वा कथं सामर्थ्यनिर्णयः ।

किसीके सहायकों को बिना जाने उसके बल का
अनुमान किस तरह लगाया जा सकता है ?

समुद्र के दक्षिणी तट पर टिटीहरी का एक जोड़ा रहता था। समय पाकर टिटीहरी का प्रसव-काल निकट आ गया। तब, टिटीहरी टिट्टिभ से बोली : स्वामी, यह स्थान प्रसव के योग्य नहीं है। कहीं समुद्र की लहरों में हमारे बच्चे बह न जाएं ?

टिट्टिभ : तुम इसकी चिन्ता क्यों करती हो ? जब तक मैं हूं कोई तुम्हारे पुत्रों को छू नहीं सकता। मुझे समुद्र से निर्बल क्यों समझती हो ?

टिट्टिभ की बात सुनकर टिटीहरी ठहाका मारकर हंसी और व्यंग्य से बोली : क्या कहने आपके ! एक समुद्र क्या सातों समुद्र भी मिलकर आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते !

कुछ समय पश्चात् गम्भीर होकर टिटीहरी फिर बोली :

स्वामी, आपमें और समुद्र में कितना अन्तर है ? कभी भी अपने से अधिक बलवान् से झगड़ा नहीं करना चाहिए। शास्त्रों में कहा है कि अयोग्य कार्य का प्रारम्भ, बन्धुओं के साथ शत्रुता, बलवान् से वैर और नारी पर विश्वास, ये चारों मृत्यु के द्वार हैं।

टिटीहरी ने कई प्रकार से टिट्टिभ को समझाया पर वह

ज़िद्दी बिल्कुल नहीं माना और अहंकारपूर्वक बोला : तुम चिन्ता न करो। अपने स्थान को छोड़कर मैं कहीं भी नहीं जाऊंगा। समुद्र जब लड़ने आएगा तब मैं उससे स्वयं निबट लूंगा।

टिट्टिभ-दम्पती की बातें सुनकर समुद्र को टिट्टिभ का बल जानने की उत्कण्ठा हुई। उसने प्रसव के पश्चात् टिटीहरी के अंडे छीन लिए। अंडों के छिन जाने से टिटीहरी को बहुत दुःख हुआ। वह रो-रोकर विलाप करने लगी। वह बोली :

स्वामी, अब मैं क्या करूं ? मैंने पहले ही कहा था कि आप इस स्थान को छोड़ दें।

पत्नी को आश्वासन देते हुए टिट्टिभ ने कहा : तुम रोओ मत, मैं तुम्हारे अंडे अवश्य वापस ला दूंगा।

इस तरह पत्नी को समझा-बुझाकर टिट्टिभ ने अपने साथी पक्षियों को एकत्रित किया और उनको साथ लेकर गरुड़देव के पास पहुंचा। सब पक्षियों ने मिलकर गरुड़देव से निवेदन किया और विलाप करते हुए टिट्टिभ बोला :

महाराज, समुद्र ने निरपराध ही मुझे दंड दिया। मेरे अंडों को बहाकर ले गया।

अपने परिवार का दुःख गरुड़ से देखा न गया। वे भगवान् विष्णु के पास गए और टिट्टिभ के अंडे दिलाने की प्रार्थना की। विष्णु भगवान् ने भी समुद्र को बुला भेजा। बेचारे समुद्र ने विष्णु जी की आज्ञा पाते ही अंडे वापस कर दिए। टिटीहरी अपने अंडों को पाकर खिल उठी।

× × ×

दमनक : महाराज, इसलिए मैं कहता हूं कि जब तक संजी-

वक के सहायकों का पता न चले, तब तक उसके बल का अनुमान कैसे लगाया जा सकता है !

पिंगलक : मैं तुम्हारी बातें तो मानता हूं, पर यह कैसे जाना जाए कि वह मुझसे द्वेष करता है।

दमनक : जिस समय वह आपके सामने अपने पैने सींगों को उठाकर युद्ध के लिए आएगा, उस समय इस बात का भी पता चल जाएगा।

दमनक उठा और वन की ओर चल पड़ा। कुछ दूर चलने पर उसे संजीवक घास चरता हुआ दिखाई दिया। दमनक भी अपने को कुछ चिन्तित-सा दिखाते हुए चलने लगा। उसको उदास देखकर संजीवक ने पूछा :

मित्र, आज उदास क्यों दिखाई दे रहे हो ? कुशल तो है न ?

दमनक : मित्र, मैं तो बड़ी भारी दुविधा में पड़ा हुआ हूं। यदि कुछ कहता हूं तो राजा से विश्वासघात करता हूं। यदि नहीं कहता तो बन्धु के साथ अन्याय करता हूं। ठीक वैसे ही जैसे कि डूबता हुआ आदमी सर्प का सहारा पाकर उसे छोड़ना भी नहीं चाहता और पकड़ भी नहीं सकता।

संजीवक : मित्र ! फिर भी सब कुछ विस्तार-सहित कहो।

दमनक : यह सच है कि राजा के विचार गुप्त रखने चाहिए। परन्तु, क्योंकि तुम मेरे विश्वास पर आए हो, अतएव मैं तुमको संकट से छुड़ाऊंगा। सुनो—राजा पिंगलक एक दिन एकान्त में कह रहा था कि मैं संजीवक को मारकर अपने बन्धुओं को निमन्त्रण दूंगा।

संजीवक : यह मैं कैसे विश्वास करूं कि वह मुझे मारना चाहता है ?

दमनक : जब पिंगलक लाल-लाल आंखें दिखाते हुए पूंछ उठाकर तुम्हारी ओर आएगा, तब स्वयं पता चल जाएगा।

संजीवक से इस प्रकार कहकर दमनक करटक के पास गया और फिर उसे लेकर सिंह के पास जाकर बोला :

महाराज, वह देखिए। संजीवक आपकी ओर हमले के लिए आ रहा है। अतः आप भी युद्ध के लिए तैयार हो जाएं। दमनक का इतना कहना था कि पिंगलक की आंखें लाल हो गईं। पूंछ क्रोध के कारण अकड़ गई। वह संजीवक की ओर बढ़ चला। पिंगलक को पूंछ उठाकर युद्ध के लिए प्रस्तुत देख कर संजीवक भी प्रस्तुत हो गया। दोनों के युद्ध में संजीवक मारा गया।

संजीवक की मृत्यु से पिंगलक को बहुत दुःख हुआ। वह उदास होकर सोचने लगा कि मैंने यह बड़ा भारी पाप किया। पिंगलक को इस तरह उदास देखकर दमनक उसके पास आया और बोला :

महाराज की जय हो ! आप उदास क्यों हैं महाराज ? शत्रु को तो जिस भांति हो मारना ही चाहिए। नीति कहती है कि राज्य की इच्छा करने वाले शत्रु को कभी भी जीवित न रखे। राजा का कार्य ही दण्ड देना है। यह तो केवल कपटी मित्र ही था। माता, पिता, भाई, पुत्र चाहे कोई भी हो, यदि वह राज-सिंहासन की इच्छा करे तो उसे मार डालना चाहिए।

इतने में वन के अन्य पशु भी एकत्र हो गए। सबने जय-जयकार करनी प्रारम्भ की। जय-जयकार से पिंगलक अपनी विचारधारा में भटक गया और विजय की मस्ती में झूमने लगा। वह फिर अपने सिंहासन पर आसीन हो गया और दमनक तथा करटक ने पिंगलक की विजय के बहाने अपनी विजय के गीत आलापने प्रारम्भ कर दिए।

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

तृतीय खण्ड

विग्रह

हंसैः सह मयूराणां विग्रहे तुल्यविक्रमे ।
विश्वास्य वञ्चिता हंसाः काकैः स्थित्वारिमन्दिरे ॥

हंसों और मोरों का युद्ध होने पर कौओं ने शत्रु के शिविर में घुसकर विश्वासघात किया और उन्हें ठग लिया ।

इस खण्ड की कथा-सूची

१. घर का भेदी
२. मूर्ख को उपदेश
३. नकल के लिए भी अकल चाहिए
४. बड़े का नाम छोटे का काम
५. दुष्ट का साथ न दो
६. करे कोई और भरे कोई
७. धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का
८. कर्त्तव्य-पालन
९. नकल का दुष्परिणाम

राजपुत्रों ने पण्डित विष्णुशर्मा को नमस्कार किया और कहा :

गुरुदेव, हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय स्वभाव से ही युद्धप्रिय होते हैं। अतः आज हमारी इच्छा युद्धनीति सुनने की है।

विष्णुशर्मा : अच्छा, तो हम आज आप लोगों को विग्रह प्रकरण सुनाते हैं।

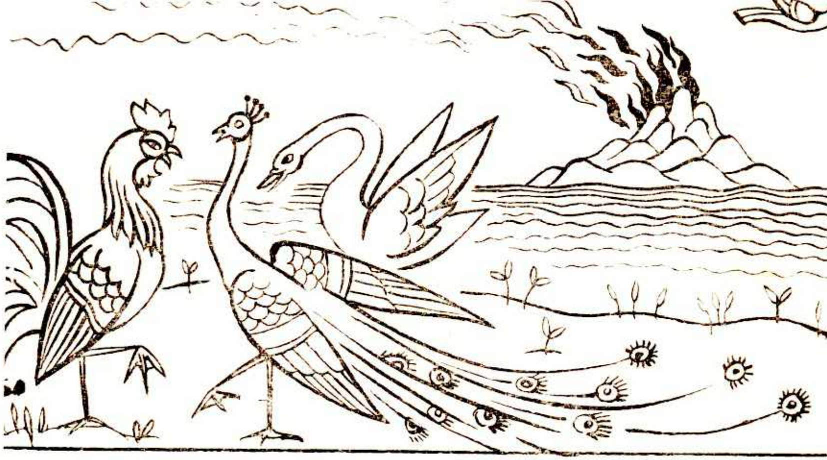

१

घर का भेदी

विश्वास्य वञ्चिता हंसाः काकैः स्थित्वारिमन्दिरे ।

कौओं ने हंसों के किले में रहकर उनके ही साथ छल किया और अपने पक्ष को विजय दिलाई ।

कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नाम का एक तालाब है। वहां किसी समय हिरण्यगर्भ नाम का राजहंस रहता था । द्वीप के पक्षियों ने मिलकर हिरण्यगर्भ को अपना राजा बना लिया । हिरण्यगर्भ बड़ा धर्मात्मा था । उसके शासन में सब पक्षी सानन्द रहते थे । एक दिन वह कमलों के सिंहासन पर अपने परिवार तथा मन्त्री सारस के साथ बैठा था । परस्पर विनोद-वार्ता चल रही थी कि दीर्घमुख नाम का बगुला कहीं से आया और हिरण्यगर्भ को प्रणाम करके बैठ गया ।

हिरण्यगर्भ : दीर्घमुख, तुम देशान्तरों का भ्रमण करके आए हो, कोई नवीन समाचार सुनाओ ।

दीर्घमुख : महाराज एक आवश्यक समाचार सुनाने के लिए ही उपस्थित हुआ हूं । आप ध्यान से सुनें—

जम्बूद्वीप में विन्ध्याचल नाम का एक पर्वत है। उसपर चित्रकर्ण नाम का एक मयूर राज्य करता है। उसकी राजधानी का नाम है दग्धारण्य। मैं भ्रमण करता हुआ वहीं पहुंच गया। वह स्थान मुझे बहुत रमणीक प्रतीत हुआ। अतः वहीं निश्चिन्त होकर घूमने लगा। मुझे इस तरह घूमते देखकर वहां के गुप्त-चर मेरे पास आए और मुझसे पूछा :

तुम कौन हो ?

मैंने कहा : मैं कर्पूरद्वीप के चक्रवर्ती राजा हिरण्यगर्भ का सेवक हूं। देश-विदेश घूमने की इच्छा से मैं यहां आया हूं।

इतना सुनना था कि सबने मुझे चारों ओर से घेर लिया और प्रश्न करने लगे।

एक ने पूछा : आपके और हमारे देश में आपको कौन-सा देश सुन्दर प्रतीत हुग्रा, कौन-सा राज्य अधिक भाग्यशाली दिखाई पड़ा।

मैं बोला : आप यह क्या कहते हैं ? आपके देश और हमारे देश में, आपके राजा और हमारे राजा में, पृथ्वी-आकाश का अन्तर है। हमारा देश स्वर्ग है। हमारे देश का राजा हिरण्यगर्भ दूसरा इन्द्र है। आप लोग इस मरु-भूमि में रहकर क्या करते हैं। चलिए, हमारे राज्य में चलिए।

इतना सुनना था कि सब क्रोध से पागल हो उठे। किसीने ठीक कहा है—

पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ।

वैसे तो दूध से सबको लाभ ही होता है, पर यदि सर्प को पिलाया जाए तो उसका तो विष ही बढ़ता है। इसी प्रकार किसी मूर्ख को अच्छी बात समझाने से उसको क्रोध ही आता

है—जैसे कि बन्दरों को उपदेश देने से पक्षी दुःखी हुए।

राजा—कैसे ?

दीर्घमुख—सुनो महाराज !

२

मूर्ख को उपदेश

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।

मूर्खों को उपदेश देने से उनका क्रोध बढ़ता ही है, शान्त नहीं होता।

नर्मदा नदी के तट पर एक बड़ा भारी सेमर का वृक्ष था। उसपर बहुत-से पक्षी रहा करते थे।

वर्षा ऋतु में एक दिन मूसलाधार पानी बरसने लगा। सब पक्षी अपने-अपने घोंसलों में बैठ गए। बन्दर भी अपने-अपने झुण्ड बनाकर वृक्षों की छाया की ओर दौड़े। बहुत-से बन्दर सेमर के वृक्ष के नीचे आकर बैठ गए।

वर्षा के साथ-साथ वायु भी चलने लगी। शीत के कारण वृक्ष के नीचे बैठे बन्दर कांपने लगे। उन्हें इस भांति आपत्ति-ग्रस्त देखकर सेमर वृक्ष पर रहने वाले पक्षी उन्हें समझाते हुए बोले :

भाई वानरो ! वर्षा समय की इस सर्दी से तुम शिक्षा लो। तुम हमारी ओर देखो, हमारे तो हाथ भी नहीं हैं बस केवल चोंच ही है। हम इसीसे सब काम करते हैं। परन्तु फिर भी हमने अपने परिश्रम से यह नीड़ बनाया और आज सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। तुम भी क्यों नहीं अपना घर बनाते ?

पक्षियों की बातें सुनते ही बन्दरों की त्यौरियां चढ़ गईं। आंखें दिखाते हुए वे क्रोध से बोले :

हमको कष्ट में देखकर तुम लोग हमारा उपहास करते हो। पानी थमते ही हम तुम्हें देख लेंगे।

कुछ समय बाद वर्षा रुक गई। बन्दर पानी रुकते ही पेड़ पर चढ़ने लगे। वानरों को अपनी ओर आते देखकर सबके सब पक्षी अपने-अपने नीड़ों को छोड़कर भाग चले। बन्दरों ने सबके नीड़ नष्ट कर दिए।

दीर्घमुख की कथा सुनकर राजा बोला :

अच्छा, तो उन पक्षियों ने फिर क्या किया ?

दीर्घमुख : तब वे क्रोध से बोले––तुम्हारे हिरण्यगर्भ को किसने राजा बनाया ?

मैंने भी कहा : तुम्हारे चित्रग्रीव को किसने राजा बनाया ? इतना सुनना था कि सब मुझपर टूट पड़े। तब मैंने भी अपना पराक्रम दिखाया।

हिरण्यगर्भ : तुमने यह ठीक नहीं किया दीर्घमुख ! अपने तथा शत्रु के बल को बिना जांचे ही जो झगड़ा कर लेता है उसे सदा नीचा देखना पड़ता है। विश्वास न हो तो चीते की खाल ओढ़कर खेत खाने वाले गधे की कहानी सुनाता हूं।

३

नकल के लिए भी अकल चाहिए

आत्मनश्च परेषां च यः समीक्ष्य बलाबलम् ।
अन्तरं नैव जानाति सः तिरस्क्रियतेऽरिभिः ।।

अपनी और शत्रु की सामर्थ्य को जो नहीं
जानता उसे शत्रुओं से नीचा देखना पड़ता है।

हस्तिनापुर में विलास नाम का एक धोबी रहता था। वह बड़ा लोभी था। अपने गधे से काम तो लेता था, पर उसे पेट-भर चारा नहीं देता था। इस प्रकार गधा कुछ ही दिनों में इतना निर्बल हो गया कि उससे काम भी नहीं किया जाता था। चलते-चलते मार्ग में ही गिर पड़ता। इस प्रकार धोबी को हानि भी बहुत उठानी पड़ती।

बहुत सोच-विचारकर धोबी कहीं से मरे हुए चीते की खाल ले आया। उस चीते की खाल को उसने गधे को पहना दिया और उसे खेतों में छोड़ दिया। खेत के रखवाले इसे दूर से देखते ही डर से उसे चीता समझकर उसके पास न फटकते। गधा मज़े से खेतों में चरता फिरता।

धीरे-धीरे यह बात सारे गांव में फैल गई। कई किसानों ने तो खेतों पर जाना भी छोड़ दिया। इस तरह कुछ ही दिनों में गधा फिर से मोटा-ताज़ा हो गया।

एक दिन किसी किसान ने सोचा—यह चीता अब कहां से आने लगा। पहले तो यह कभी आता नहीं था। उसने एक काला कम्बल ओढ़ लिया और हाथ में तीर-कमान लेकर झुक-

कर खड़ा हो गया। गधा धीरे-धीरे चरता हुआ उधर निकला। उसने दूर से ही इस किसान को देखा। जरूर यह भी कोई गधा है, यह सोचकर गधा अपने स्वर में चिल्लाता हुआ किसान की ओर दौड़ा। अब तो किसान ने खेल ही खेल में उसका काम तमाम कर दिया।

इसलिए मैं कहता हूं कि अपने और दूसरे के बल को अवश्य देख लें।

× × ×

दीर्घमुख : इसके बाद वे बोले : मूर्ख बगुले! तू हमारे राज्य में ही विचर रहा है और हमारी ही बुराई करता है? यह कहकर वे मुझे अपनी चोंचों से मारने लगे और बोले : बगुले! सुन, तेरा राजा भी तो बहुत कोमल है। वह अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता फिर राज्य की क्या रक्षा करेगा? तू तो मूर्ख है! यदि किसी वृक्ष के नीचे ही रहना है तो कोई बड़ा भारी वृक्ष खोजना चाहिए। क्योंकि यदि भाग्यवश वह फल न दे तो क्या? उसकी छाया कोई नहीं छीन लेता! किस राजहीन के राज्य में तू रहता है? सदा किसी पराक्रमी राजा के आश्रय में रहना चाहिए : क्योंकि सिंह की अनुकम्पा से प्रायः बकरी भी वन में निश्चिन्त घूमती है। और फिर बड़े आदमियों का तो नाम भी बड़ा होता है। देखो चन्द्रमा के नाम-मात्र से खरगोशों ने हाथी से अपनी रक्षा की।

मैंने पूछा---कैसे?

एक पक्षी बोला---सुनो!

४

बड़े का नाम, छोटे का काम

व्यपदेशेऽपि सिद्धिः स्यादतिशक्ते नराधिपे ।

शक्तिमान् राजा के नाम से ही दुष्कर कार्य भी सिद्ध हो जाता है ।

एक बार वर्षा न होने के कारण सुदीर्घ नाम का वन सूख-सा गया । वन के निवासी बिलखने लगे । छोटे-छोटे तालाब तो सूखकर मैदान हो गए । प्यासे पशुओं और पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड इधर-उधर प्यास से भागते दिखाई पड़ते । वन में रहने वाले हाथी भी बेचैन हो गए और एक झुण्ड बनाकर अपने राजा विशालकर्ण के पास गए और बोले :

महाराज ! हम प्यास से मरे जा रहे हैं । नहाने के लिए जल नहीं मिलता । बिना नहाये तो हमारा जीवन ही बीतना कठिन हो रहा है ।

विशालकर्ण भी चिन्तित हो गया । उसने बड़े प्रयत्न से उन्हें शोर मचाने से रोका और बोला :

आप लोग चिन्ता न करें । मैं इस विषय में पहले से ही चिन्तित हूं । आप लोग मेरे साथ चलें । मैं आप लोगों को पास ही एक सरोवर दिखाता हूं । वह इस वन में सबसे बड़ा सरोवर है । उसका जल कभी समाप्त नहीं हो सकता ।

इतना कहकर विशालकर्ण उन सबको एक तालाब पर ले गया । उस दिन से सारे वन के हाथी उसी तालाब पर जाने लगे ।

तालाब के किनारे खरगोशों का एक दल रहता था। हाथियों के आने-जाने से कई खरगोश नित्य उनके पैरों के नीचे आकर मर जाया करते। हाथियों ने इसकी कभी भी चिन्ता न की। पर खरगोश भला कब चुप रह सकते थे। उन्होंने एक सभा की और अपने परिवारों की रक्षा का उपाय सोचने लगे।

उसी समय विजय नाम का एक बूढ़ा खरगोश उठा और बोला :

भाइयो, आप दुःख न करें। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि उन हाथियों का तालाब पर आना ही बन्द कर दूंगा।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वह विशालकर्ण की ओर चला और एक ऊंची चट्टान पर बैठकर विशालकर्ण हाथी से बोला :

राजन् मैं विजय नाम का खरगोश हूं। भगवान् चन्द्रमा का सेवक हूं। उन्होंने मुझे अपना दूत बनाकर आपके पास भेजा है।

भगवान् चन्द्रमा का नाम सुनते ही विशालकर्ण के आश्चर्य की सीमा न रही। वह बोला :

आज चन्द्र भगवान् को मुझसे कौन-सा काम आ पड़ा? चन्द्र भगवान् ने मुझे क्या आज्ञा दी है?

विजय : राजन्! मैं दूत हूं। मैं कभी असत्य नहीं बोलूंगा, क्योंकि मुझे मृत्यु का भय तो है ही नहीं। भगवान् चन्द्र के वचनों को मैं आपके सामने दोहराता हूं। उन्होंने कहा है :

तुमने चन्द्रसरोवर के रक्षक खरगोशों को निकालकर अच्छा नहीं किया। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मैं खरगोशों की रक्षा करता हूं। मूर्ख देख, खरगोशों की रक्षा के कारण

ही तो मेरा नाम शशांक पड़ा है। मेरी आज्ञा है कि तुम इस सरोवर पर जाना बन्द कर दो क्योंकि इस भांति खरगोशों का नाश होता है।

भगवान् चन्द्र की यह आज्ञा सुनकर हस्तिराज विशालकर्ण भयभीत हो गया। वह चन्द्रमा की ओर हाथ जोड़कर कहने लगा :

महाराज शशांक मुझे क्षमा करें। मैंने यह सब जान-बूझकर नहीं किया। भविष्य में ऐसा अपराध न होगा।

विजय : यदि ऐसा ही है तो तुम मेरे साथ उस सरोवर तक चलो जहां भगवान् चन्द्र क्रोध में लाल होकर कांप रहे हैं।

चतुर खरगोश विशालकर्ण को उसी सरोवर पर ले गया। जल में हिलते चन्द्रमा को दिखाकर बोला :

देखो, भगवान् कितने क्रोधित हैं। इन्हें प्रणाम करो।

विजय की बात सुनकर विशालकर्ण ने सरोवर में हिलते हुए चन्द्र को प्रणाम किया।

विजय ने भी चन्द्रमा से प्रार्थना की कि इस बार विशालकर्ण को क्षमा किया जाए। यह भविष्य में ऐसा अपराध कभी भी नहीं करेगा।

बेचारा विशालकर्ण फिर कभी वहां नहीं गया।

× × ×

वही पक्षी फिर बोला : इसलिए मैं कहता हूं कि किसी महाप्रतापी राजा का आश्रय लेना चाहिए।

तब मैंने कहा : जैसा तुम कहते हो ठीक वैसा ही प्रतापी हमारा राजा राजहंस है।

इतना सुनना था कि उन लोगों ने मुझे पकड़ लिया और

अपने राजा के पास ले जाकर बोले :

महाराज, यह कर्पूरद्वीप में रहने वाले हिरण्यगर्भ नाम के राजहंस का सेवक है।

उसी समय गृध्र बोला :

तुम्हारे राजा का मन्त्री कौन है ? मैंने कहा—सर्वज्ञ नाम का चक्रवाक ! एक तोता जो वहीं बैठा था, बोला—महाराज, कर्पूरद्वीप आदि छोटे-छोटे द्वीप जम्बूद्वीप के ही अन्तर्गत हैं। वहां भी आपका ही राज्य है।

मैंने कहा—अगर केवल मुंह चलाने से ही राज्य हो जाता है तो जम्बूद्वीप में भी हमारा ही राज्य है।

राजा बोला—इसका निर्णय कैसे होगा ?

मैंने कहा—युद्ध ही इसका निर्णय कर सकता है ?

राजा : जाओ, अपने स्वामी को युद्ध के लिए तैयार करो।

इतना कहने के बाद राजा ने अपने प्रिय सेवक तोते को अपना दूत बनाकर मेरे साथ भेजना चाहा। पर तोता बोला :

महाराज, मैं इस दुष्ट के साथ कभी भी नहीं जाऊंगा। क्योंकि नीति कहती है कि कभी भी दुष्ट का संग नहीं करना चाहिए। अन्यथा वही हाल होता है जो कौए के साथ चलने और रहने से हंस का और बटेर का हुआ।

राजा : वह कैसे ?

तोता बोला : सुनो महाराज !

५

दुष्ट का साथ न दो

न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन समं क्वचित्।

दुष्ट के साथ न तो ठहरना चाहिए और न कभी उसके साथ जाना ही चाहिए।

उज्जयिनी नगर के मार्ग में एक पीपल का वृक्ष था। उस-पर एक कौआ और एक हंस रहते थे। वृक्ष की छाया इतनी विशाल थी कि पथिक उसके नीचे विश्राम किया करते थे।

एक दिन एक शिकारी उसी मार्ग से जा रहा था। ग्रीष्म ऋतु थी। मार्ग तय करना कठिन हो रहा था। शिकारी उस वृक्ष की छाया के नीचे पहुंचा और अपना धनुष-बाण एक ओर रखकर विश्राम करने लगा। उसे नींद आ गई और वह सो गया। अचानक निद्रा में उसका मुंह खुल गया। धीरे-धीरे वृक्ष की छाया का रुख भी बदला और सूर्य की गर्म किरणें उसके मुंह पर पड़ने लगीं। शिकारी की इस अवस्था पर हंस को दया आई। उसने अपने पंख फैला लिए और इस भांति वृक्ष की शाखा पर बैठ गया कि शिकारी के मुंह पर छाया हो गई।

दुष्ट कौआ भला कब यह देख सकता था? वह अपने स्थान से उड़ा और ठीक शिकारी के मुंह के ऊपर जाकर उसने विष्ठा कर दी। स्वयं वहां से उड़ गया। इस कुकृत्य के कारण शिकारी की नींद टूट गई। पर हंस अपने स्थान से न उठा। वह सोचने लगा : मैं तो शिकारी के साथ उपकार कर रहा था, उसका अपकारी तो कौआ है। अतः वह मुझे क्यों मारने

लगा। हंस इस प्रकार सोच ही रहा था कि शिकारी ने मुंह उठाकर ऊपर देखा। हंस को ठीक अपने मुंह पर बैठा देखकर उसने उसको ही अपना अपराधी समझा। क्रोध में आकर शिकारी ने एक ही तीर से हंस को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

इतना कहकर तोता बोला—महाराज, अब कौए और बटेर की कहानी सुनें।

६

करे कोई और भरे कोई

एक बार भगवान् गरुड़ यात्रा करते हुए समुद्र-तट पर आ रहे थे। उनके दर्शनार्थ स्थान-स्थान से पक्षियों के समूह समुद्र-तट की ओर चले। किसी वन में एक कौआ और बटेर परस्पर मित्र की भांति रहते थे। उन्होंने भी समुद्र की ओर प्रयाण करने का निश्चय किया।

दोनों समुद्र की ओर चल दिए। रास्ते में कौए ने देखा कि कोई ग्वालिन अपने सिर पर दही की हांडी रखे हुए जा रही थी। फिर क्या था? कौए ने तेज़ी से पंखों को चलाना प्रारम्भ किया। भोली बटेर भी उसका साथ निभाने की इच्छा से पीछे-पीछे उड़ने लगी। ग्वालिन के पास पहुंचकर कौआ उसकी हांडी पर बैठ गया। बटेर भी बैठ गई। पर उसने कौए की भांति चुराकर दही खाना उचित न समझा। थोड़े समय बाद ग्वालिन का घर आ गया। उसने हांडी नीचे उतारी। कौए और बटेर को हांडी पर बैठा देखकर उसने उन्हें उड़ाने

के लिए हाथ उठाया। कौआ तो उसी समय उड़ गया, पर अपने को निरपराध समझकर बटेर धीरे-धीरे चलती रही। फलस्वरूप उसे ग्वालिन ने पकड़ लिया और मार डाला।

तोता बोला : इसीलिए मैं कहता हूं कि दुष्ट बगुले के साथ नहीं जाऊंगा।

दीर्घमुख : तत्पश्चात् वहां के राजा ने मेरा यथोचित सत्कार करके मुझे विदा कर दिया और मेरे पीछे ही तोते को भेज दिया। वह भी मेरे पीछे-पीछे आ रहा होगा।

दीर्घमुख की बात सुनकर राजहंस का मन्त्री चक्रवाक हंस कर बोला :

महाराज, इसने दूसरे के राज्य में जाकर भी राजकार्य ही किया है, पर उसमें मूर्खता के अतिरिक्त और है ही क्या ?

हिरण्यगर्भ : अब बीती बातों में क्या रखा है ? इस समय तो प्रस्तुत विषय पर ही विचार-विमर्श करना चाहिए।

चक्रवाक : महाराज, नीति कहती है कि आप अपने गुप्तचर भेजें जो कि शत्रु का समस्त समाचार हमें भेजते रहें। पर यह गुप्तचर ऐसे होने चाहिए जो जल और थल दोनों पर ही चल सकें। मेरे विचार से इस बगुले को ही भेजना चाहिए।

इतने में ही द्वारपाल ने आकर निवेदन किया :

द्वारपाल : महाराज, जम्बूद्वीप से कोई तोता आया है, आपसे मिलना चाहता है।

मन्त्री : उसे अतिथिशाला में ठहरा दो।

हिरण्यगर्भ : तोते के आने से पहले ही हमें अपने किले का निर्माण कर लेना चाहिए। सारस को इस कार्य के लिए नियुक्त करो।

मन्त्री : महाराज, आप चिन्ता न करें। यह जलाशय ही हमारा किला है। इसमें केवल भोजन की कमी है।

द्वारपाल ने फिर सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा :

महाराज, सिंहलद्वीप से मेघवर्ण नाम का कौआ उपस्थित हुआ है।

हिरण्यगर्भ : कौआ चतुर एवं नीतिज्ञ होता है। उसका इस समय आना उचित ही हुआ।

मन्त्री : ऐसा न कहें महाराज, कौआ पर-पक्ष का है। अपने पक्ष को छोड़कर पर-पक्ष से मिलने वाले की नीले रंग वाले गीदड़ जैसी दशा होती है।

राजा बोला—कैसे ?

चक्रवाक : सुनिए महाराज !

७

धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का

आत्मपक्षं परित्यज्य परपक्षेषु यो रतः
स परैर्हन्यते मूढो···

अपने पक्ष को छोड़कर जो दूसरे दल का हित सोचे उसे दूसरे दल के लोग भी मार देते हैं।

एक दिन कर्बुर नाम का गीदड़ गांव की ओर निकल पड़ा। रात का समय था और तिसपर अमावस्या का अन्धकार। कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। चलते-चलते वह किसी धोबी के नील-भरे बर्तन में गिर पड़ा। उसने बार-बार प्रयत्न किया, पर वह उससे निकल ही नहीं पाया। रात बीतती जा

रही थी। गीदड़ को लगता जैसे उसकी मुसीबत पास आ रही हो। धोबी आएगा और पीटेगा। यह विचार उसका खून सुखा रहा था। उससे जो कुछ बन पड़ा उसने किया। पर फिर भी निकल न सका।

धीरे-धीरे तारे ऊषा की लाली में घुसने लगे। तभी अचानक गीदड़ को कुछ सूझी। वह उसी समय इस तरह लेट गया मानो मर गया हो। धोबी आया, गीदड़ को मरा हुग्रा जानकर उसने उसे उठाया और कुछ दूर पर फेंक ग्राया। गीदड़ भी सिर पर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ।

भागते-भागते वह बहुत दूर निकल गया। वृक्ष के नीचे बैठकर वह विश्राम करने लगा। वह सोचने लगा—अब मेरा शरीर नीला तो हो ही गया है, क्यों न इससे कोई लाभ उठाऊं। कुछ समय इसी प्रकार सोचकर वह उठा और ग्रकड़कर गीदड़ों के पास जाकर बोला:

हे वनवासियो, मेरी ग्रोर देखो। वन-देवता ने समस्त बूटियों का रस निकालकर मुझे स्नान कराया है। अतएव मेरा सुन्दर शरीर अब नीला पड़ गया है। वन-देवता ने मुझे आशीष देते हुए इस वन का राज्य भी सौंप दिया है। ग्राप लोगों के लिए मेरी आज्ञा है कि आज से आप लोग मेरे शासन में रहें और अपने को मेरी प्रजा समझें।

वन के समस्त गीदड़ों ने तथा व्याघ्र, चीता, शेर आदि सब पशुओं ने गीदड़ को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उसे दैवी शक्ति का प्रतिनिधि समझकर अपना राजा स्वीकार कर लिया।

एक समय राजा कर्बुर की राजसभा आयोजित थी। वन के

सिंहादि सब पशु उसमें उपस्थित थे। कर्बुर अहंकार में चूर हो गया और उसने अपने साथी गीदड़ों का तिरस्कार कर दिया। गीदड़ भला यह कब सह सकते थे ! उन्होंने मिलकर एक और सभा का आयोजन किया। सभा में एक गीदड़ ने कहा :

भाइयो, मैं विश्वास दिलाता हूं कि इसे सिंह आदि बलवान् पशुओं के हाथ अवश्य ही मरवा दूंगा।

इतना कहकर सायंकाल के समय अन्य गीदड़ों को लेकर वह गीदड़ कर्बुर की ओर चला। कर्बुर सिंह आदि पशुओं के साथ मंत्रणा कर रहा था। इन गीदड़ों ने जाकर उसे चारों ओर से घेर लिया और ज़ोर-ज़ोर से रोना प्रारम्भ कर दिया। गीदड़ों का शब्द सुनकर कर्बुर से भी न रहा गया। स्वभावतः वह भी गीदड़ों के साथ-साथ शब्द करने लगा।

कर्बुर का स्वर सुनते ही सिंह आदि पशुओं को भी यह पता चल गया कि यह साधारण गीदड़ है। अतः उन्होंने चिढ़कर उसे मार डाला।

× × ×

मन्त्री बोला : इसीलिए मैं कहता हूं कि अपना पक्ष छोड़कर ग्राए हुए व्यक्ति का क्या विश्वास ?

राजा : फिर भी दूर से आए हुए अतिथि का स्वागत तो करना ही चाहिए। इसे अपने साथ रखना है ग्रथवा नहीं, इस विषय पर बाद में विचार किया जाएगा।

सारस ने आकर सूचना दी—महाराज, दुर्ग भली भांति तैयार हो गया।

राजा : तो तोते को हमारे सामने उपस्थित किया जाए।

राजदूत तोता दरबार में लाया गया। उसे हिरण्यगर्भ के

आसन से दूर ही आसन दिया गया। वह अपने आसन पर अकड़कर बैठ गया।

दूत : हे हिरण्यगर्भ ! जम्बूद्वीप से महाराजाधिराज श्री चित्रवर्ण तुम्हें आज्ञा देते हैं कि यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो शीघ्र ही जम्बूद्वीप आकर हमारे चरणों में शीश झुकाओ। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो शीघ्र ही कर्पूरद्वीप को छोड़कर कहीं और चले जाओ। क्योंकि कर्पूरद्वीप भी जम्बूद्वीप के शासन के अन्तर्गत है।

दूत के वचन सुनते ही हिरण्यगर्भ के क्रोध की सीमा न रही। वह क्रोध में भरकर बोला :

है कोई जो इस दुष्ट की गर्दन पकड़कर इसे सभा-भवन से बाहर निकाल दे ?

यह सुनते ही कौआ मेघवर्ण खड़ा होकर सगर्व बोला :

महाराज, यदि आज्ञा हो तो मैं इस दुष्ट तोते को अभी यहीं पर मार डालूं।

सभा की ऐसी गम्भीर परिस्थिति देखकर मन्त्री चक्रवाक राजा और मेघवर्ण को शान्त करते हुए बोला :

दूत को नहीं मारना चाहिए, क्योंकि वह अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहता। वह जो कुछ भी कहता है, राजा के वचन ही कहता है। फिर इनका तो कार्य भी यही है। वह तो चाहे शस्त्र ही उठे हुए हों कभी भी असत्य नहीं बोलेगा।

इस प्रकार चक्रवाक ने राजा और कौए को समझाया।

दोनों के शान्त होने पर राजदूत तोते को प्रसन्न करके वापस जम्बूद्वीप भेज दिया गया।

चित्रवर्ण ने तोते से पूछा—दूत, कर्पूरद्वीप कैसा देश है ?

वहां का राजा कैसा है ?

तोता : महाराज, कर्पुरद्वीप के विषय में अब आप क्या पूछते हैं ! वास्तव में कर्पुरद्वीप दूसरा स्वर्ग है और हिरण्यगर्भ दूसरा इन्द्र ! अब आप शीघ्र युद्ध की तैयारी करें और कर्पूरद्वीप को अपनी राजधानी बनाएं।

चित्रवर्ण ने अपने सेनापति को सेना सुसज्जित करने की आज्ञा दी और कोषाध्यक्ष को आज्ञा दी कि वह बहुत-सा कोष तैयार करे जो कि युद्ध में साथ-साथ चलेगा, जिससे कि समय-समय पर सेना को पुरस्कार आदि देकर प्रसन्न किया जा सके। क्योंकि कहा है :

न नरस्य नरो दासो दासस्त्वर्थस्य भूपते !

—कोई भी किसी का सेवक नहीं होता। सब पैसे की सेवा करते हैं।

शुभ मुहूर्त में राजा चित्रवर्ण की सेना ने कर्पूरद्वीप की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

हिरण्यगर्भ के दरबार में एक दिन एक दूत ने आकर सूचना दी :

महाराज, राजा चित्रवर्ण इस समय अपनी सेना को साथ ले युद्ध करने के लिए मलयगिरि की तराई में ठहरा हुआ है। उसके मन्त्री को यह कहते भी सुना गया है कि उन्होंने हमारे किले में कोई गुप्तचर भी लगा दिया है। अतः किले की जहां तक हो सके देख-रेख करनी चाहिए।

मन्त्री : महाराज, यह गुप्तचर कौआ ही हो सकता है।

राजा : हो सकता है कि तुम्हारा अनुमान असत्य हो। क्योंकि

यदि वह शत्रु का पक्षपाती है तो तोते के साथ क्यों लड़ने लगा था ? अब भी वह युद्ध का नाम सुनते ही लड़ने को कमर कसे बैठा रहता है ।

मन्त्री : फिर भी बाहर से आए व्यक्ति पर शंका होती ही है ।

राजा : कभी-कभी बाहर से आए हुए भी उपकारी हो जाते हैं । सुनो, मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूं !

८

कर्तव्य-पालन

परोऽपि हितवान्बन्धुः बन्धुरप्यहितः परः ।

भलाई करने वाला पराया भी भाई समान होता है । और भाई भी यदि अहित चाहे तो शत्रु ही है ।

एक दिन राजा शूद्रक की राजसभा में वीरवर नाम का एक राजकुमार उपस्थित हुआ । राजा ने उससे सप्रेम पूछा :

कहो राजकुमार, तुम कौन से देश से, और राजसभा में किस कारण से पधारे हो ?

राजकुमार : महाराज, मेरा नाम वीरवर है । मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूं । अतः कृपया आप मुझे अपना सेवक स्वीकार करें ।

राजा : तुम कितना वेतन लोगे राजकुमार !

वीरवर : पांच सौ सुवर्ण मुद्रा प्रतिदिन लूंगा ।

राजा : तुम्हारी सेवा की सामग्री क्या है ?

वीरवर : महाराज, केवल दो बाहू और एक तलवार।

राजा : यह सम्भव नहीं।

राजकुमार वीरवर सभा से चल दिया। शूद्रक के मंत्रियों ने वीरवर का वेतन और उसकी सामग्री देखकर राजा को सलाह दी कि महाराज इस राजकुमार को चार दिन का वेतन देकर नियुक्त कर लेना चाहिए। देखते हैं कि यह किस कार्य का व्यक्ति है। मंत्रियों की बात सुनकर राजा ने वीरवर को वापस बुला लिया और उसे चार दिन का वेतन देकर अपनी सेवक-वृत्ति पर नियुक्त कर दिया।

राजा ने वीरवर के पीछे गुप्तचर नियुक्त कर दिए, जिन्होंने वीरवर का व्यय का ब्यौरा बतलाते हुए कहा : महाराज, वीरवर ने अपने वेतन का आधा भाग देव-पूजन तथा यज्ञादि में दान कर दिया। शेष का आधा देश के निर्धनों की सहायता में लगा दिया। बाकी का उसने उपयोग किया। और फिर आपके द्वार पर खड़ा हो गया। उसके हाथ में तलवार थी और कुछ भी न था।

राजा शूद्रक ने देखा, वीरवर सदा नंगी तलवार लिए उसके साथ रहता है। उसके भवन के अन्दर चले जाने पर स्वयं द्वार पर खड़ा ही रहता है।

एक दिन कृष्णपक्ष की चौदस की रात्रि को राजा शूद्रक अपने रनिवास में सो रहा था। अचानक किसीके रोने का स्वर सुनकर उसकी निद्रा भंग हो गई। वह उठकर बैठ गया। अब उसे रुदन का स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहा था। वह किसी नारी का करुण-क्रन्दन था।

राजा ने पुकारा—द्वार पर कौन है ?

वीरवर : मैं हूं महाराज, वीरवर !

राजा : जाओ देखो, वह अर्धरात्रि में कौन रो रहा है ?

वीरवर : जैसी महाराज की आज्ञा !

इतना कहकर वीरवर बिना सोचे-समझे ही चल दिया। वीरवर के चले जाने के कुछ ही क्षणों के उपरान्त राजा को विचार आया कि मैंने इस घोर अन्धकार में वीरवर को अकेले ही भेजकर अच्छा नहीं किया। भावी को कोई नहीं जानता। कहीं वीरवर पर कोई मुसीबत न आए। राजा स्वयं उठा और खड्ग हाथ में लेकर वीरवर के पीछे-पीछे चुपचाप चलने लगा। उसने देखा—

उस घने अन्धकार में बहुमूल्य भूषणों से सुसज्जित एक रूपवती युवती को वीरवर ने देखा। वीरवर उसके पास गया और मीठे-मीठे शब्दों से उसे धैर्य दिलाते हुए बोला—देवि, तुम कौन हो ? यहां अकेली क्यों बैठी हो ? रो क्यों रही हो ?

स्त्री : मैं राजा शूद्रक की राजलक्ष्मी हूं। बहुत समय तक इसके अधिकार में रही। अब किसी दूसरे राजा के पास जाना चाहती हूं।

वीरवर : देवि, प्रत्येक हानि से बचने के उपाय हुआ करते हैं। आप इस राज्य को छोड़कर जा रही हैं। यह तो इस राज्य की सबसे बड़ी हानि है। क्या इससे बचने का कोई उपाय नहीं ?

लक्ष्मी—हां है। पर क्या तुम उस उपाय को सिद्ध कर सकोगे ?

वीरवर क्यों नहीं ? मैं जिसका अन्न खाता हूं उसके लिए क्या नहीं कर सकता ?

लक्ष्मी : तब तो केवल एक ही उपाय है। तुम अपने पुत्र शक्तिधर को भगवती की बलि दे दो।

वीरवर : यह भी कोई कठिन काम है देवी ? जैसी आपकी आज्ञा।

लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई। वीरवर अपने निवास-स्थान की ओर उसी समय चल दिया। शूद्रक राजा भी उसीके पीछे चला। घर पहुंचकर वीरवर ने अपनी पत्नी एवं अपने पुत्र को सोते से जगाया। वीरवर ने आदि से अन्त तक की सारी सच्ची कहानी दोनों को सुना दी। पिता की बात सुनकर शक्तिधर प्रसन्न होकर बोला :

पिताजी, मैं धन्य हूं जो अपने राज्य और स्वामी के लिए काम आ रहा हूं। अब आप विलम्ब न कीजिए। मुझे शीघ्र ही भगवती के मन्दिर में ले चलिए। शास्त्रों में लिखा है—

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि परोपकार के लिए अपना धन और जीवन दोनों का समर्पण कर दे। फिर यह तो अपना ही काम है।

शक्तिधर की मां बोली—यदि हमने इस समय भी बलि न दी तो इस राज्य का इतना वेतन क्यों ले रहे हैं ?

पुत्र और पत्नी की बात सुनकर वीरवर बहुत प्रसन्न हुआ। अपने पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए बोला—पुत्र, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। तुमने आज हमारे वंश का मस्तक ऊंचा कर दिया।

वीरवर उन दोनों को साथ लेकर भगवती के मन्दिर में गया। राजा भी दीवार की आड़ में खड़ा होकर इनका कृत्य

देखने लगा। वीरवर बोला :

भगवती ! आप प्रसन्न हों। महाराज शूद्रक की जय हो ! मेरा पुत्र आपकी बलि के लिए उपस्थित है। आप इसे स्वीकार करें। इतना कहकर वीरवर ने उसी तलवार से अपने पुत्र का गला काट दिया।

वीरवर कुछ समय तक शान्त खड़ा रहा। फिर उसने सोचा—बिना पुत्र के मेरा जीवन भी निरर्थक है। अब क्या जीवन में मुझे ऐसा सौभाग्यशाली और पितृभक्त पुत्र प्राप्त हो सकेगा ? फिर इस अपुत्र जीवन से क्या लाभ !

वीरवर ने तभी अपने खड्ग से अपनी हत्या कर ली। सती पत्नी भला फिर कैसे रह सकती थी। उसने भी उसी समय अपने पति के चरण-चिह्नों का अनुकरण किया।

इस भयानक नर-मेध को देखकर राजा के रोंगटे खड़े हो गए। वह सोचने लगा—

मेरे जैसे तो सहस्रों प्राणी इस संसार में क्रमशः आते-जाते रहते हैं। पर इस राजपुत्र के समान न तो कोई पैदा हुआ है और न हो ही सकेगा। फिर मेरे जीवन से क्या लाभ, जिसने वीरवर जैसे सेवक को हाथों से खो दिया।

दुःखी होकर राजा ने भी अपना सिर काटने के लिए तलवार उठाई। परन्तु उसी समय सर्वमंगला देवी ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया, और बोली :

राजन्, मैं तेरे साहस से अत्यधिक प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूं कि तुम्हारी मृत्यु के बाद भी तुम्हारी राजलक्ष्मी युगों तक अविचल रहेगी।

भगवती को साष्टांग प्रणाम करते हुए राजा बोला : भग-

वती ! मुझे अपना जीवन अथवा राज्य नहीं चाहिए । यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपा करके इन तीनों को पुनः जीवित कर देवें ।

भगवती ने प्रसन्न होकर सबको जीवित कर दिया ।

प्रातःकाल रनिवास से निकलते हुए राजा ने वीरवर से पूछा :

वीरवर, रात्रि में कोलाहल क्यों हो रहा था ?

वीरवर : महाराज, एक स्त्री रो रही थी । मुझे देखते ही वह न जाने कहां चली गई ।

राजा मुस्कराया और सोचने लगा :

कितना महान् व्यक्तित्व है इस राजकुमार का ? यह सत्य है कि यह पराया है पर फिर भी अपने बन्धुओं से सौगुना अच्छा है ।

राजा ने राजसभा में वीरवर की सारी की सारी कहानी कह सुनाई । फिर वीरवर को बुलाकर कर्नाटक का राज्य उसे दे दिया ।

× × ×

हिरण्यगर्भ आगे बोला—इसीलिए मैं कहता हूं कि हो सकता है कि यह कौआ भी हमारे कल्याण के लिए ही आया हो ।

मन्त्री : महाराज का विचार तो सत्य है पर नीति कहती है :

यदि किसी को पुण्यों के प्रभाव से कभी कोई सुख प्राप्त हुआ तो वैसा ही मुझे भी प्राप्त हो जाए, इस भांति की कल्पना भी नहीं करनी चाहिए । धन की इच्छा से नाई ने जब ऐसा ही किया तो उसे मृत्यु प्राप्त हुई ।

हिरण्यगर्भ : मैं यह कथा सुनना चाहता हूं।
मन्त्री : सुनो महाराज ! ......

९

नकल का दुष्परिणाम

पुण्याल्लब्धं यदेकेन तन्ममापि भविष्यति।

जो कुछ किसीने पुण्य से प्राप्त किया, वह सब मुझे भी मिल जाए, यह लोभ मनुष्य को दुखी करता है।

अयोध्या में चूड़ामणि नाम का एक क्षत्रिय रहा करता था। दुर्भाग्य से वह निर्धन था। अतः उसे सदा धन की ही चिन्ता लगी रहती। एक दिन उसने भगवान् की तपस्या करके धन प्राप्त करने का निश्चय किया। वह वन में चला गया और आशुतोष भगवान् शंकर की उपासना करने लगा। भोलेनाथ भगवान् थोड़ी-सी ही तपस्या से प्रसन्न हो गए और उन्होंने स्वप्न में उससे कहा :

क्षत्रिय, मैं तेरी इस कठोर तपस्या से प्रसन्न हूं। तुम्हें धन की कामना है तो तू कल प्रातःकाल किसी नाई को बुलाकर क्षौर आदि कराके अपने नगर की ओर चल देना। मार्ग में वट-वृक्ष के नीचे तुझे एक संन्यासी जाता हुआ मिलेगा। तू उसे डण्डे से खूब पीटना।

प्रातःकाल होते ही क्षत्रिय ने एक नाई को बुलाया, क्षौर करवाकर वह उसी मार्ग की ओर चल पड़ा। उसके पीछे नाई भी हो लिया। कुछ ही समय बाद उसी मार्ग से एक भिक्षुक

जाता हुआ दिखाई दिया। क्षत्रिय ने उसे पीटना प्रारम्भ किया। भिक्षुक पिटते-पिटते मणि-रत्नों से भरा हुआ एक सुवर्ण-घट बन गया।

इस दृश्य को देखकर नाई ने विचार किया—धन पाने की तो यह बहुत ही आसान और सुन्दर रीति है। अगले दिन वह भी प्रातःकाल हाथ में डण्डा लेकर निकल पड़ा। संयोगवश उस दिन भी एक भिक्षुक उस ओर से जा रहा था। नाई ने उसे पीटना आरम्भ किया और इतना पीटा कि वह मर गया।

अयोध्या के राजा ने उसे इस अपराध में मृत्यु-दण्ड दे दिया।

× × ×

हिरण्यगर्भ : अस्तु, छोड़ो इस झगड़े को। इस समय क्या करना चाहिए?

मन्त्री : मैंने अभी-अभी दूत से सुना है कि राजा चित्रवर्ण ने अपने महामन्त्री का तिरस्कार किया। इस अपमान के कारण महामन्त्री उसे त्यागकर वन को चला गया। अब हमें उसे मार्ग में घेर लेना चाहिए। इस भांति वह दुष्ट शीघ्र ही पराजित हो जाएगा।

मन्त्री की मन्त्रणा के अनुसार राजा हिरण्यगर्भ ने अपनी सेना समेत चित्रवर्ण को मार्ग में ही घेर लिया। दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा चित्रवर्ण के अनेकों सैनिक काम आए। उनके बहुत से सेनापति वीरगति को प्राप्त हुए। चित्रवर्ण को अन्त में हार मानकर पीछे हटना पड़ा। अपनी इस पराजय से चित्रवर्ण को बहुत दुःख हुआ। वह महामन्त्री गृध्र के पास गया और बोला :

महामन्त्री, युद्ध के समय इस भांति हमारी उपेक्षा करना तुम्हें उचित नहीं। यदि मैंने कभी तुम्हें कुछ कह भी दिया तो आपत्ति के समय उससे रुष्ट नहीं होना चाहिए।

मन्त्री : राजन्, तुम्हें राजकार्य में निपुणता नहीं। मूर्ख राजा भी यदि विद्वानों का आदर करता है तो उसे भी लक्ष्मी प्राप्त होती है। नदी के किनारे रहने वाला वृक्ष सदा हरा-भरा ही रहता है। आपने अपनी सेना और बल पर घमण्ड किया और मेरा अपमान किया। अतः आपको यह पराजय प्राप्त हुई।

चित्रवर्ण हाथ जोड़कर मन्त्री से बोला—मन्त्री, यह मेरा ही अपराध है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे अब उचित सलाह दें। मेरे विचार में तो अब वापस अपने देश को ही जाना अच्छा होगा।

मन्त्री : राजन् ! आप घबराएं नहीं। सन्निपात के बीमार के सामने वैद्य की कुशलता और शत्रु की सफल नीति को असफल बनाने में मन्त्री की कुशलता होती है। अच्छे समय में तो कौन कार्य-पटु नहीं होता ? अब आप वापस लौटने का विचार न करें। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आपको शत्रु पर विजय दिलाऊंगा।

राजा : तो अब हम क्या करें ?

मन्त्री : शीघ्र ही राजहंस का किला घेर लो।

× × ×

चित्रवर्ण और महामन्त्री के इस वार्तालाप को हिरण्यगर्भ के दूत ने सुन लिया और सब ठीक-ठीक आकर राजा से निवेदन किया। हिरण्यगर्भ ने अपने समस्त सैनिकों को किले की

सुरक्षा की चेतावनी दे दी। उन्हें पर्याप्त मात्रा में पुरस्कार आदि भी बांटे।

थोड़े समय पश्चात् मेघवर्ण नाम का कौआ हिरण्यगर्भ के पास आया और प्रणाम करके बोला :

महाराज, इस समय शत्रु किले के मुख्य द्वार पर युद्ध के लिए प्रस्तुत है। अतः यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं बाहर जाकर अपना बल और पौरुष दिखलाऊं।

मन्त्री : यदि बाहर जाकर ही युद्ध करना था तो फिर किले में क्यों ठहरे ? तुम नीति नहीं जानते। जल से निकल-कर नक्र बलहीन हो जाता है। वन से निकलकर सिंह भी गीदड़ हो जाता है और किले से निकलकर महान् से महान् पराक्रमी योद्धा भी हार जाता है।

इस तरह मन्त्री ने मेघवर्ण को वहीं किले में रोक लिया। हिरण्यगर्भ के सब सैनिक भी किले के द्वार पर जाकर युद्ध करने लगे। थोड़ी देर में जब सब लोग युद्ध में अपनी सुध-बुध खो बैठे तो अचानक कौए ने किले में आग लगा दी। आग लगते ही किले में से 'किला जीत लिया' का उच्च स्वर सुनाई दिया। समस्त जलचर तो पानी में घुस गए, पर बेचारा हंस मन्दगति होने के कारण न घुस पाया। उसे चित्रवर्ण के सेनापति कुक्कुट ने आकर सारस समेत घेर लिया। सारस हिरण्यगर्भ से बोला :

महाराज, अब भागना शोभा नहीं देता। भागने के उपरान्त भी तो एक न एक दिन मर ही जाना है। फिर क्यों न युद्ध में ही लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिए जाएं।

सेनापति कुक्कुट ने अपने प्रहारों से हिरण्यगर्भ को बहुत घायल कर दिया। तभी सारस ने अपनी लम्बी चोंच से कुक्कुट

पर प्रहार किए और अपने पंखों से राजहंस को जल में ज़ोर से ढकेल दिया। तदनन्तर सारस ने बहुत पराक्रम दिखाया। परन्तु अन्त में सब पक्षियों ने मिलकर सारस को मार डाला।

चित्रवर्ण किले की समस्त धनराशि को लेकर जयघोष के साथ अपनी राजधानी को लौट गया।

राजकुमार बोले—सारस कितना योग्य था, जिसने अपने प्राणों की भी चिन्ता न की और स्वामी को बचाया।

विष्णुशर्मा : भगवान् उसे स्वर्ग प्रदान करे।

।। तृतीय खंड समाप्त ।।

चतुर्थ खण्ड

सन्धि

वृत्ते महति सङ्ग्रामे राज्ञोः निहतसेनयोः ।
स्थेयाभ्यां गृद्धचक्राभ्यां वाचा सन्धिः कृतः क्षणात् ।।

युद्ध में दोनों राजाओं की सेनाओं के नष्ट हो जाने पर गृध्र और चकवे ने मध्यस्थ होकर हंस और मयूर की सन्धि करा दी ।

इस खण्ड की कथा-सूची—

१. समबल शत्रु से सन्धि करे
२. मित्रों का कहा मानो
३. भविष्य का विचार करो
४. उपाय के साथ अपाय भी सोचो
५. नीच न छोड़े नीचता
६. मुख में राम बगल में छुरी
७. शेखचिल्ली
८. सलाह से काम करो
९. धूर्तों का चक्कर
१०. संगति का असर
११. जैसा समय वैसा काम
१२. बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय

कथा प्रारम्भ होने के साथ राजपुत्रों न विष्णुशर्मा से निवेदन किया :

गुरुदेव ! हमने विग्रह सुन लिया। हमने सुना है कि राजा लोग परस्पर सन्धि भी कर लेते हैं। अतः हमें सन्धि-प्रकरण सुनाएं।

विष्णुशर्मा : सुनो ! मैं तुम्हें उन्हीं राजहंस और मयूर की सन्धि सुनाता हूं जिनकी लड़ाई तुमने विग्रह में सुनी है।

१

समबल शत्रु से सन्धि करे

वृत्ते महति सङ्ग्रामे राज्ञोः निहतसेनयोः ।
स्थेयाभ्यां गृध्रचक्राभ्यां वाचा सन्धिः कृतः क्षणात् ।।

युद्ध में दोनों राजाओं की सेना नष्ट हो जाने पर गृध्र और चकवे ने मध्यस्थ बनकर हंस और मयूर की सन्धि करा दी ।

दुर्ग पर चित्रवर्ण का अधिकार हो जाने के उपरान्त हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री से पूछा :

मन्त्री ! हमारे किले में आग किसने लगा दी ?

मन्त्री : महाराज, 'मेघवर्ण नाम का कौआ अपने परिवार-सहित नहीं दिखाई देता। अतः प्रतीत होता है कि उसीने किले में आग लगाई ।

हिरण्यगर्भ : इसमें किसीका भी अपराध नहीं। दैव ही हमारे प्रतिकूल था।

मन्त्री : राजन्, बुरी दशा प्राप्त करके भाग्य की निन्दा करना मूर्खता है। अपने कर्मों के दोष को कोई भी बुरा नहीं कहता। एक बार एक कछुए ने भी इसी प्रकार कहा था ।

राजा : वह क्या कथा है ?

मन्त्री : सुनो !…

२

मित्रों का कहा मानो

सुहृदां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति ।

जो कल्याण चाहने वाले मित्रों की सलाह नहीं सुनते
वे नष्ट हो जाते हैं ।

मगध देश में फुल्लोत्पल नाम के तालाब में संकट और विकट नाम के दो हंस रहते थे। इनका कम्बुग्रीव नाम का एक कछुआ मित्र भी उसी सरोवर में रहता था । प्रायः धीवरों के आने की सूचना हंस कछुए को पहुंचा दिया करते। इस भांति कछुआ कठिन समय में बच जाता था ।

एक दिन कई धीवर उसी तालाब के पास से जा रहे थे । पानी में खेलती हुई मछलियों को देखकर वे वहीं रुक गए । मछलियों को मोटा-ताजा देखकर उन्होंने अगले दिन वहीं आने का निश्चय किया । एक ने बल देते हुए कहा :

कल प्रातःकाल हम अवश्य ही यहां की मछलियों और कछुओं को पकड़ेंगे ।

संकट और विकट ने यही समाचार कछुए और मछलियों को सुना दिया। कछुआ सुनकर बहुत भयभीत हुआ और रक्षा के उपाय सोचने लगा । वह हंसों से बोला :

मित्रो, तुमने तो धीवरों की बातें अपने कानों से सुनी हैं। अब तुम्हीं कोई उपाय बताओ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरा काल ही सामने खड़ा है ।

हंस बोले—इन धीवरों को कहने दो। प्रातःकाल जैसा योग्य समझा जाएगा, किया जाएगा। अगर तुम्हें मरना ही नहीं होगा तो धीवर क्या, बलवान् से बलवान् भी तुम्हारा बाल बांका नहीं कर सकता।

कछुआ : मित्रो, ऐसा न कहो। इन बातों का जो परिणाम मैंने देखा है वह मैं सुनाता हूं।…

३

भविष्य का विचार करो

यद्भविष्यो विनश्यति।

जो होगा सो होगा ही, यह विश्वास रखने वाला नष्ट हो जाता है।

आज से कुछ वर्ष पूर्व इसी सरोवर में अनागतविधाता (आपत्ति आने से पूर्व ही निराकरण करने वाली) प्रत्युत्पन्न-मति (समय देखकर कार्य करने वाली) और यद्भविष्य (होनहार को अटल मानने वाली) मछलियां रहती थीं।

एक दिन आज की भांति कई धीवर यहां आए और खड़े होकर विचार करने लगे कि कल आकर यहां मछलियां पकड़ेंगे।

धीवरों की बातें सुनकर अनागतविधाता तो किसी प्रकार दूसरे तालाब में चली गई और अपने प्राण बचाए।

प्रत्युत्पन्नमति ने विचार किया कि यह कोई निश्चित तो है ही नहीं कि धीवर कल अवश्य आएंगे। अतः सरोवर नहीं छोड़ना चाहिए। समय पर जैसा उचित हो करना आवश्यक है।

तीसरी यद्भविष्य विचार करने लगी—इस तरह की

दौड़-धूप में क्या रखा है ? यदि कल मुझे मरना ही होगा तो कोई बचा नहीं सकता। यदि जीवित रहना है तो कोई क्या खाकर मारेगा ? भाग्य से मैं क्या, कोई भी नहीं लड़ सकता।

तीनों के विचार भिन्न थे अतः उनके रक्षा के उपाय भी भिन्न थे।

अगले दिन प्रातःकाल धीवर इसी सरोवर पर जाल लेकर आए। अनागतविधाता तो पहले ही जा चुकी थी। प्रत्युत्पन्नमति जब पकड़ी गई तो उसने अपने को मृत दिखाया। धीवर ने उसे जाल से खोलकर एक ओर रख दिया। वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उछली और पानी में पहुंच गई। अब वह गहरे पानी में पहुंच चुकी थी। यद्भविष्य ने बचने का कोई भी विचार नहीं किया। अतः वह मारी गई।

× × ×

कछुआ : अतएव मैं कहता हूं कि हमें शीघ्र ही इस सरोवर को छोड़ देना चाहिए।

हंस बोले—आप जल की भांति पृथ्वी पर तो चल नहीं सकते, फिर यह किस भांति सम्भव है ?

कछुआ : कोई ऐसा उपाय सोचिए, जिससे कि मैं आकाश-मार्ग से ही आपके साथ जा सकूं।

हंस : वह कौन-सा उपाय है ?

कछुआ : आप लोग एक लकड़ी अपने मुंह में ले लें, मैं उसे बीच से अपने मुंह से पकड़ लूंगा। इस भांति हम तीनों ही आकाश-मार्ग के द्वारा दूसरे तालाब में पहुंच जाएंगे।

हंस : भाई, उपाय के साथ-साथ उसकी हानियों पर भी

विचार कर लेना चाहिए। नहीं तो कहीं हमें भी बगुले की भांति न पछताना पड़े।

कछुआ : वह कैसे ?

हंस : सुनिए !...

४

उपाय के साथ अपाय भी सोचो

उपायं चिन्तयन् प्राज्ञो ह्यपायमपि चिन्तयेत् ।

बुद्धिमान् को चाहिए कि उपाय के साथ ही उससे सम्बन्धित दुष्परिणामों का भी विचार कर ले।

उत्तर दिशा में गृध्रकूट नाम का एक बड़ा भारी पीपल का वृक्ष है। उसपर किसी समय बहुत-से बगुले रहते थे। वृक्ष के नीचे एक सांप भी रहता था जो सदा उनके बच्चों को खा जाता था। बच्चों की मृत्यु पर वह बगुले विलाप करते थे। उनके विलाप को सुनकर एक बगुले ने उन्हें सलाह दी कि तुम मछलियां पकड़कर नेवले के बिल से लेकर सर्प के बिल तक उनकी पंक्ति बना दो। इस भांति नेवला उन्हें खाता हुआ सर्प के बिल तक आएगा और सर्प को भी मार डालेगा।

बगुलों ने ऐसा ही किया। नेवला मछलियों को खाता हुआ आया और उसने सर्प को भी मार डाला।

परन्तु अगले दिन नेवले ने जब पीपल पर वकशावकों का कोलाहल सुना तो उन्हें भी मारकर खा लिया।

हंस : इसीलिए हम कहते हैं कि जब उपाय सोचे तो

उसकी हानियां भी सोच ले। इस भांति तुम्हें आकाश से उड़ता देखकर लोग तुम्हारी हंसी उड़ाएंगे। तब तुम बोलोगे और बोलते ही नीचे गिर पड़ोगे।

कछुआ मुस्कराकर बोला : मैं इतना मूर्ख थोड़े ही हूं। कहने वाले जो चाहें कहें, मैं कुछ भी उत्तर नहीं दूंगा।

हंसों ने कछुए को बहुत समझाया। पर जब कछुआ नहीं माना तो विवश होकर वे उसे साथ लेकर उड़ चले। मार्ग में उन्हें एक ग्वालों की टोली मिली। कछुए को इस भांति आकाश में जाता देखकर उन्हें कौतूहल हुआ और वे इनके पीछे भागने लगे।

एक ग्वाला बोला : यदि यह गिर पड़े तो मैं इसे पकाकर खा जाऊं।

दूसरा : मैं भूनकर खा जाऊं।

तीसरा : मैं आज बिरादरीवालों को दावत दूं।

चौथा : मैं कच्चा ही खा जाऊं।

ग्वालों की इन बातों को सुनकर कछुए को क्रोध आ गया। वह गुस्से में भरकर बोला :

तुम सब खाक खाओ।

इतना कहना था कि वह वहीं गिर पड़ा और मर गया।

× × ×

हिरण्यगर्भ का मन्त्री बोला :

महाराज, मैं इसी कारण कहता था कि जो अपना कल्याण चाहने वालों की बात नहीं मानता वह विपत्ति में पड़ जाता है।

उसी समय राजहंस के गुप्तचर बगुले ने आकर कहा : स्वामी

मैंने पहले ही कहा था कि आप अपने किले का संशोधन कर लें। यह आग उसी दुष्ट कौवे ने लगाई है।

राजा : आप लोग ठीक कहते हैं। शत्रु पर प्रेम से अथवा उपकारों के कारण विश्वास करने वाले का वही हाल होता है जो वृक्ष की शाखा पर सोने वाले मूर्ख का।

दूत : महाराज, जब कौआ हमारे किले में आग लगाकर चित्रवर्ण के पास पहुंचा तो उसने प्रसन्न होकर कहा :

मेघवर्ण को कर्पूरद्वीप का राज्य दे दो।

राजा ने आश्चर्य से पूछा : तो ?

दूत : महाराज, तब चित्रवर्ण के मन्त्री गृध्र ने कहा—यह कौआ इतने भारी पुरस्कार के योग्य नहीं है। सुनो मैं आपको एक सुनाता हूं।

५

नीच न छोड़े नीचता

नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य स्वामिनं हन्तुमिच्छति।

नीच व्यक्ति ऊंचा पद पाकर उपकारी स्वामी को ही मारना चाहता है।

गौतम ऋषि के आश्रम में एक महातप नाम के ऋषि तप करते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि कौआ अपनी चोंच में किसी चूहे को ले जा रहा है। अचानक चूहा उसकी चोंच से छूट गया। महातप मुनि को उसपर दया आई। मुनि ने उसे उठा लिया। अन्न के दाने खिलाकर उन्होंने उसे पाला-पोसा।

एक दिन किसी बिल्ली की उसपर निगाह पड़ गई। जब

वह उसे पकड़ने दौड़ी तो चूहा भागकर मुनि की गोद में आ गया। मुनि को उसपर दया आई तो उन्होंने उसे चूहे से बिलाव बना दिया।

जंगली कुत्ते इस बिलाव को खाने दौड़ते थे। अतः मुनि ने उसे भी कुत्ता बना दिया। अब वह कुत्ता व्याघ्र से डरता था। अतः मुनि ने उसे कुत्ते से व्याघ्र भी बना दिया।

प्रायः पड़ोसी मुनि इस व्याघ्र और महातप मुनि को देखकर कहा करते :

इस मुनि ने इसे चूहे से व्याघ्र बना दिया।

व्याघ्र सोचने लगा—यह तो बड़ा भारी कलंक है। जब तक यह मुनि जीवित है, मेरा यह कलंक धुल नहीं सकता। अतः इस मुनि को मार डालना चाहिए।

एक दिन अवसर पाकर जब व्याघ्र मुनि को मारने चला तो मुनि ने मुस्कराकर कहा : तू चूहा हो जा।

मुनि का कहना था कि वह व्याघ्र फिर से चूहा हो गया।

× × ×

मन्त्री ने आगे कहा—महाराज, केवल इतना ही नहीं। कौआ नीच जाति का है। नीच अपने दुष्कर्म तो करता ही है पर उनसे हानि भी होती है। जैसे बगुला केकड़े के लोभ में मारा गया।

राजा बोला—वह कैसे?

६

मुख में राम बगल में छुरी

विषकुम्भं पयोमुखम् ।

ऐसे मित्र का विश्वास न करे जो मुंह का मीठा और दिल का बुरा हो ।

मालव देश में पद्मगर्भ नाम का एक सरोवर था । एक दिन बूढ़ा बगुला उसके तट पर चिन्तित-सा बैठा था। एक केकड़े ने आकर पूछा :

महाशय, आज आप अपना भोजन छोड़कर यहां क्यों बैठे हैं ।

वह बोला : भाई, इस सरोवर की मछलियां ही मेरे जीवन का आधार हैं। आज जब मैं शहर में घूम रहा था, तब मैंने सुना कि कुछ धीवर आपस में बातें कर रहे थे और कह रहे थे कि हम कल पद्मगर्भ सरोवर पर जाकर मछलियां पकड़ेंगे । अब मैं सोच रहा हूं कि यदि वे धीवर इन मछलियों को ले जाएंगे तो मैं क्या खाऊंगा ।

बगुले की बात सुनकर मछलियां सोचने लगीं : इस आपत्ति के समय में तो यह भी हमारा मित्र है। अतः मछलियों ने बगुले से कहा :

इस आपत्ति से बचने का क्या कोई उपाय भी है ?

बगुला : इस समय तो केवल यही उपाय है कि इस तालाब को छोड़कर किसी दूसरे तालाब में चला जाए। यदि आप लोग

चाहें तो मैं आप लोगों को पास वाले सरोवर में एक-एक करके ले जा सकता हूं।

फिर क्या था ? प्रत्येक मछली सबसे पहले जाने के लिए तैयार हो गई। बगुला बारी-बारी सबको ले जाता और पास की झाड़ी में छिपकर उन्हें खा जाता। इसी भांति उसने बहुत-सी मछलियों को खा लिया।

कुछ समय उपरान्त केकड़े ने बगुले से कहा: भाई, सब-को ले जाओगे। पर क्या हमें यहीं छोड़ जाओगे ?

बगुले का पेट तो खूब भर चुका था। पर फिर भी उसने सोचा—मैंने जीवन-भर में कभी भी केकड़े का मांस नहीं खाया—आज सौभाग्य से यह मुझे प्राप्त हुआ है। यह विचार कर उसने केकड़े से कहा :

अरे भाई यह क्या कहते हो ? तुम्हें नहीं ले जाऊंगा तो और किसे ले जाऊंगा ?

बगुले ने केकड़े को अपनी पीठ पर बिठा लिया और उस ओर चल दिया जहां उसने मछलियों को खाकर उनकी हड्डियों का ढेर लगाया हुआ था। हड्डियों के ढेर को देखकर केकड़े ने सारी स्थिति समझ ली। वह सोचने लगा—तब तक भय से डरना नहीं चाहिए जब तक वह आ न जाए। भय के उपस्थित हो जाने पर उसके निवारण के लिए यथोचित रूप से जैसा बन पड़े करना चाहिए।

केकड़े ने पीठ पर से ही बगुले की गर्दन पर अपने दांत जमा दिए : उसने उसे ऐसा काटा कि वह वहीं मर गया।

× × ×

दूत हिरण्यगर्भ से बोला : महाराज, इतनी कथा सुनकर

मन्त्री गृध्र आगे बोला : हे राजन् ! इसीलिए मैं कहता हूं कि नीच बड़ा बनने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ता। वह लोभ करता है और नष्ट ही हो जाता है।

चित्रवर्ण : मन्त्रिन्, मैंने विचार किया था कि मेघवर्ण को कर्पूरद्वीप का राजा बना दूंगा तो वह वहां के सुन्दर-सुन्दर पदार्थ हमारे लिए भेजा करेगा।

मन्त्री हंसा और फिर बोला : महाराज, जो भविष्य का विचार करके मन ही मन के लड्डू खाता है वह बर्तन फोड़ने वाले ब्राह्मण की भांति दुःखी होता है।

राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—यह कथा कैसे है ?

मन्त्री बोला—सुनो महाराज !

७

शेखचिल्ली

अनागतवतीं चिन्तां कृत्वा यस्तु प्रहृष्यति ।
स तिरस्कारमाप्नोति……

भविष्य के कल्पित मनोरथों से ही जो व्यक्ति फूला नहीं समाता उसे प्रायः नीचा देखना पड़ता है।

देवीकोट नाम के नगर में देवशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था। यजमानों के दान से उसकी आजीविका चलती थी। संक्रांति के दिन उसे किसी यजमान ने एक सत्तुओं से भरा सकोरा दिया। उसे लेकर देवशर्मा अपने घर वापस चल दिया।

ज्येष्ठ, आषाढ़ की गर्मी थी। नीचे से मार्ग की गरम-गरम मिट्टी उसके पैर जला रही थी और ऊपर से जलता हुआ सूर्य उसके सिर पर आग बरसा रहा था। इस धूप से बचने के लिए

उसने आस-पास छाया के लिए अपने नेत्र दौड़ाए। उसे एक ओर एक कुम्हार का घर दिखाई दिया। उसे तो मानो डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। कुम्हार के घर के पास ही मिट्टी के बर्तनों का बड़ा भारी ढेर लगा हुआ था। उसने अपना सत्तू का सकोरा वहां रखा और हाथ में डण्डा लेकर उसकी रख-वाली करने लगा। वह बार-बार डण्डा हिला रहा था और सोच रहा था—

जब मैं इन सत्तुओं वाले सकोरे को बेचूंगा तो मुझे दस कौड़ियां प्राप्त होंगी। फिर मैं इसी कुम्हार से कौड़ियों के घड़े और सकोरे खरीद लूंगा। उनको बेचूंगा और इस तरह कई बार बेचने पर जब मेरे पास बहुत पैसे हो जाएंगे तो मैं कपड़े की दुकान खोल लूंगा। इसी प्रकार एक दिन मैं देखते ही देखते लख-पति हो जाऊंगा। लखपति होकर मैं चार शादियां करूंगा। उनमें से जो सबसे अधिक सुन्दर होगी, मैं उसे हृदय से प्रेम करूंगा। वे तीनों इस सुन्दर पत्नी से डाह करेंगी, आपस में लड़ेंगी और झगड़ेंगी। उस समय जब वह मेरे बार-बार मना करने पर भी नहीं मानेंगी तब मैं डण्डे से ऐसे पीटूंगा। इतना सोचकर ज्यों ही उसने डण्डा चलाया, उसके सकोरे के साथ-साथ कुम्हार के बर्तन भी फूट गए।

डण्डे और बर्तनों की आवाज सुनकर कुम्हार वहां आया और पण्डितजी को फटकारते हुए बोला :

कृपया आप हमारे घर फिर कभी न आइएगा।

× × ×

गृध्र बोला : इसीलिए मैं कहता हूं कि कभी भी भविष्य का विचार करके प्रसन्न नहीं होना चाहिए।

चित्रवर्ण : तो मन्त्री तुम्हीं मुझे सलाह दो कि मैं क्या करूं ?

मन्त्री : राजन् मेरी सलाह तो यह है कि अब आप हिरयण्गर्भ से संधि कर लें। कारण यह है कि अब वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने वाली है। ऐसे समय में युद्ध होने पर हमें अपने देश जाना भी कठिन हो जाएगा। हमने विजय प्राप्त की। हमें यश भी मिला। अब यहां और अधिक समय ठहरना आपत्तिजनक है। राजन्, हो सकता है कि आपको मेरा कहना कटु लगता हो, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं।

राजा : मन्त्रिन्, यह तो तुम्हारा कर्तव्य ही है। वह मन्त्रीपद के योग्य नहीं जो कटु अथवा मीठे के लोभ तथा भय में पड़कर राजा को अच्छी सम्मति न दे।

मन्त्री : महाराज, तो अवश्य ही आप संधि कर लें। समान बल वालों में यदि संधि हो जाए तो बहुत कल्याण-कारी होती है। अन्यथा कभी-कभी दोनों ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जैसे—

८

सलाह से काम करो

सन्धिमिच्छेत् समानादपि।

तुल्य बल वाले से सन्धि कर लेना ही श्रेयस्कर है।

प्राचीन काल में सुन्द और अपसुन्द नाम के दो महान् बलशाली दैत्य हुए हैं। इन्हें त्रिलोकी पर एकछत्र राज्य करने की महान् अभिलाषा थी। अतः इन्होंने शंकर भगवान् की

तपस्या प्रारम्भ कर दी। भगवान् आशुतोष शंकर इन दोनों की तपस्या से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों को दर्शन दिए और कहा :

दैत्यो, मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूं। तुम जो वरदान चाहो मांग लो।

सरस्वती की कृपा से वे दैत्य जो कुछ वरदान मांगना चाहते थे न मांग पाए। अपितु उन्होंने कहा :

भगवान्, यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें अपनी पार्वती वरदान में दे दीजिए।

शंकर भगवान् के क्रोध की सीमा न रही। परन्तु वचन-बद्ध होने के कारण उन्होंने उन दोनों को पार्वती सौंप दी।

पार्वती के अनुपम दैवी सौन्दर्य को देखकर दोनों उनके रूप पर लट्टू हो गए। दोनों ने 'यह मेरी है', 'यह मेरी है' कहकर शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया।

दोनों को इस भांति लड़ते देखकर शंकर भगवान् ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और उनकी ओर चल दिए। वृद्ध को अपनी ओर आते देखकर दोनों उसे मध्यस्थ बनाने के लिए बोले :

ब्राह्मण देवता, कृपया हमारी बात सुनें!

ब्राह्मण : कहो भाई, तुम तो ऐसे प्रतीत होते हो जैसे लड़ने को उतारू हो।

पहला दैत्य : महाराज, मैंने इस सुन्दरी को तप करके प्राप्त किया है। अतः यह मेरी है।

दूसरा दैत्य : जी नहीं, मैंने इससे अधिक तप किया है। अतः यह मेरी है।

ब्राह्मण : भाई, तुम दोनों ने साथ-साथ तप किया है। अब यह निर्णय कठिन है कि किसने अधिक तप किया है। अतः अब आप लोग परस्पर युद्ध करें। इस तरह जो अधिक बलवान् हो उसे पार्वती मिल जाए।

फिर क्या था! दोनों ने अपनी-अपनी गदा संभाल ली और लड़ने लगे। भगवान् शंकर इन दोनों की पापमय प्रवृत्ति को देखकर मुस्करा रहे थे। इतने में ही दोनों एक-दूसरे के असह्य वार से घायल होकर सदा के लिए सो गए।

भगवान् शंकर अपनी पार्वती को लेकर पुनः हिमालय की ओर बढ़ चले।

× × ×

मन्त्री : अतएव मैं कहता हूं कि श्रीमान् उनसे मैत्री कर लें।

हिरण्यगर्भ का दूत आगे बोला : महाराज, इसी भांति चित्रवर्ण के मन्त्री गृध्र ने बार-बार चित्रवर्ण को समझाया।

दूत के मुंह से शत्रुपक्ष का समाचार सुनकर हिरण्यगर्भ अपने मन्त्री से बोला :

मन्त्रिन्, तुम्हारी क्या सलाह है? हमें चित्रवर्ण से सन्धि करनी चाहिए अथवा नहीं?

मन्त्री : महाराज! चित्रवर्ण इस समय विजयगर्व में फूला हुआ है। अतः वह सीधी तरह से सन्धि के लिए प्रस्तुत न होगा।

हिरण्यगर्भ : तो क्या किया जाए?

मन्त्री : महाराज, सिंहलद्वीप का महाबल नाम का सारस आपका परम मित्र है। आप उसे सूचना दें कि वह चित्रवर्ण पर चढ़ाई कर दे। इस भांति बराबर का शत्रु पाकर चित्रवर्ण

स्वयं आपसे सन्धि करने आएगा ।

यह सुनकर राजा हिरण्यगर्भ ने दूत बगुले को महाबल सारस के पास पत्र देकर भेज दिया और चित्रवर्ण के लिए दूसरे गुप्तचर नियुक्त कर दिए ।

× × ×

मन्त्री के मुंह से सन्धि की बात सुनकर चित्रवर्ण ने मेघवर्ण को बुलाकर पूछा :

मेघवर्ण ! हिरण्यगर्भ कैसे राजा हैं ? उसका मन्त्री कैसा है ?

मेघवर्ण : महाराज, हिरण्यगर्भ तो दूसरा ही युधिष्ठिर है । उसके मन्त्री जैसा तो मैंने अपने जीवन में देखा ही नहीं ।

चित्रवर्ण : यदि ऐसा है तो तूने उसे ठग किस प्रकार लिया ?

मेघवर्ण : महाराज, विश्वास दिलाकर तो प्रत्येक को सहज में ही ठगा जा सकता है । अपनी गोद में सुलाकर यदि किसीको मार दिया जाए तो उसमें क्या बहादुरी ! हां, उस चतुर मन्त्री ने तो मुझे पहले ही पहचान लिया था । किन्तु हिरण्यगर्भ बड़ा ही सज्जन है । वह ठगा गया । नीति कहती है कि अपने जैसा सज्जन प्रत्येक को नहीं समझना चाहिए । ऐसा करने पर जो होता है वह मैं सुनाता हूं ।

६

धूर्तों का चक्कर

आत्मौपम्येन यो वेत्ति दुर्जनं सत्यवादिनम् ।
स सदा वञ्चयते धूर्तैः………………॥

जो दुर्जनों को भी अपने ही समान सत्यवादी समझता है, वह धूर्तों के हथकण्डों का शिकार बन जाता है।

महर्षि गौतम के वन में एक ब्राह्मण रहता था। उसने एक बार यज्ञ करने का विचार किया। अतः वह यज्ञ की सामग्री लेने नगर गया। वहां उसने यज्ञ की अन्यान्य सामग्री के साथ-साथ बलि देने के लिए एक बकरा भी लिया। बकरे को कन्धे पर लादकर वह आश्रम की ओर चल दिया।

मार्ग में उसे तीन धूर्तों ने देखा। बकरे को देखकर उनके मुंह में पानी भर आया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि जिस भांति भी हो, हम इस ब्राह्मण से यह बकरा अवश्य ले लेंगे। यह निश्चय करके तीनों एक-एक कोस के अन्तर पर खड़े हो गए। ज्यों ही वह ब्राह्मण एक धूर्त के पास से बकरे को कन्धे पर लादे निकला, धूर्त बोला :

ब्राह्मण देवता, कहां से आ रहे हो ?

ब्राह्मण : नगर से आ रहा हूं।

धूर्त : इस कुत्ते को कन्धे पर लादकर कहां ले जा रहे हो ?

ब्राह्मण : कुत्ता ! नहीं भाई, यह कुत्ता नहीं, बकरा है।

इतना कह ब्राह्मण आगे बढ़ चला।

धूर्त : हमारा क्या ? कुत्ते को ही लादकर ले जाओ।

ब्राह्मण अभी लगभग दो मील ही चला होगा कि एक दूसरा धूर्त मिला।

धूर्त : पण्डितजी ! कहां जा रहे हो।

ब्राह्मण : अपने आश्रम जा रहा हूं।

धूर्त ने आश्चर्य से पूछा : अरे ? तुमने इस कुत्ते को अपने कन्धे पर क्यों लाद रखा है ?

ब्राह्मण : कुत्ता ! इतना कहकर उसने उसको पृथ्वी पर खड़ा किया और ध्यान से देखकर फिर आगे चलता बना।

ब्राह्मण सोचता जा रहा था : क्या यह बकरा नहीं ? कुत्ता भी क्या ऐसा ही होता है ? पर कुत्ते की तो पूंछ काफी लम्बी होती है ? हो सकता है यह किसी नई जाति का कुत्ता हो ? ब्राह्मण ने फिर ध्यान से देखा—पर यह सोचकर कि कुछ भी हो यह कुत्ता नहीं हो सकता, ये लोग न जाने क्यों कुत्ता कहते हैं, आगे चल दिया।

कौआ कुछ ठहरकर बोला—ठीक भी है, दुष्टों की बातों में आकर सज्जन की बुद्धि फिर जाती है।

राजा बोला—कैसे ?

कौआ बोला···

१०
संगति का असर

मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि खलोक्तिभिः ।

सज्जन पुरुषों की भी बुद्धि दुष्टों की छल-
भरी बातों में आकर चंचल हो जाती है ।

किसी वन में मदोत्कट नाम का सिंह रहता था । उसके तीन सेवक थे, जिनमें एक कौआ, एक व्याघ्र और एक गीदड़ था । ये सारे वन में घूम-फिरकर अपने राजा को वन का समाचार सुनाया करते थे । यदि कोई नया प्राणी वन में आता तो सबसे पहले ये ही उससे मिलते ।

एक दिन तीनों वन में घूम रहे थे कि उन्हें एक ऊंट मिला । कौए ने उच्च स्वर में ऊंट से कहा :

ऐ ऊंट, तू किसकी आज्ञा से इस वन में फिर रहा है ?

ऊंट ने अपना सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया । ऊंट की दर्दभरी कहानी सुनकर तीनों को उस परदया आई और फिर वे उसे सिंह के पास ले गए । तीनों की प्रार्थना पर सिंह ने ऊंट को अभय दिया । उस दिन से ऊंट भी सिंह के सेवकों में से एक हो गया ।

एक समय वर्षा अधिक होने के कारण तीनों सेवकों को कुछ खाने को नहीं मिला । सिंह की भी एक बलवान् हाथी से मुठभेड़ हो गई थी । सिंह ने उसे मार तो दिया पर हाथी ने भी उसे कम चोटें न दी थीं । अतः वह भी आस-पास जाकर आहार खोजने में असमर्थ था । सबने बहुत प्रयत्न किया, पर

किसी प्रकार सफलता नहीं मिली। बहुत संतप्त होकर कौए ने व्याघ्र से कहा :

मित्र, इस कांटे खाने वाले ऊंट से हमें क्या लाभ? इसे मारकर क्यों न खा लिया जाए?

व्याघ्र : मूर्ख, जानते नहीं हो, महाराज ने इसे अभय प्रदान किया हुआ है।

गीदड़ : इन बातों में क्या रखा है? भूख से व्याकुल होकर प्राणी क्या नहीं कर लेता? भूखी होने पर स्त्री अपने पुत्र का त्याग कर देती है। भूखी होने पर सर्पिणी अपने पुत्रों को खा जाती है। फिर भूखा, भयभीत, पागल, थका हुआ, क्रोधी और लोभी प्राणी तो हरएक पाप करने पर तुल जाता है।

आपस में सलाह करके तीनों मदोत्कट सिंह के पास गए।

सिंह ने पूछा : क्यों! आज कहीं कुछ प्राप्त हुआ।

कौआ : महाराज, बहुत खोजा पर कुछ भी नहीं मिला।

चिन्तित होकर सिंह बोला :

अब हम लोग किस भांति जीवित रह सकेंगे?

कौआ : परोसी हुई थाली को छोड़कर बैठे रहने के कारण आज हमारी यह हालत हुई।

सिंह : तुम्हारा क्या तात्पर्य है? क्या कोई भोजन हमारे पास है?

कौए ने सिंह के कान में कहा : चित्रकर्ण।

सिंह : यह कभी नहीं हो सकता। हमने चित्रकर्ण को अभयदान दिया हुआ है। अभयदान से बढ़कर तो गोदान अथवा अन्नदान भी श्रेयस्कर नहीं। मैं उसे कभी भी नहीं मार सकता।

कौआ : श्रीमान् जी ! आप चिन्ता क्यों करते हैं ? आप उसकी हत्या न करें। वह स्वयं आपके लिए अपना शरीर समर्पित करेगा।

सिंह शान्त हो गया। कौआ अगले दिन समय पाकर सब साथियों को लेकर सिंह के सम्मुख उपस्थित हुआ।

कौआ : महाराज, कहीं कुछ भी खोजे नहीं मिलता। आप इस भांति कब तक भूखे रहेंगे ? अब तो आप मुझे ही खा लें। अन्यथा आपकी दया से पला हुआ यह शरीर फिर कब काम आएगा ?

सिंह : भाई, मैं स्वयं मर सकता हूं, पर कभी ऐसा नहीं कर सकता।

कौए के बाद गीदड़ और गीदड़ के बाद व्याघ्र ने ऐसा ही कहा। अपनत्व दिखाने की इच्छा से चित्रकर्ण (ऊंट) ने भी उसी भांति कहा। उसके कहते ही व्याघ्र नें उसे मार डाला और सबने मिलकर खा लिया।

× × ×

बस ठीक इसी भांति धूर्तों की बात सुनकर ब्राह्मण के मस्तिष्क में भी भ्रम उत्पन्न हो गया।

वह अभी थोड़ी दूर ही और चल पाया था कि उसे तीसरा ठग भी मिल गया। उसने भी हंसते हुए कहा :

पण्डितजी, इस कुत्ते को कहां ले जा रहे हो ?

तीसरे धूर्त की बात सुनकर ब्राह्मण को विश्वास हो गया कि हो न हो यह कुत्ता ही है। दुकानदार ने मुझे ठग लिया। अब तो मैं अपवित्र हो गया। ब्राह्मण ने बकरे को वहीं मार्ग पर छोड़ दिया और स्वयं स्नान करने चल दिया।

× × ×

मेघवर्ण बोला : इसीलिए मैं कहता हूं कि अपने समान ही दूसरों को भी सज्जन समझने वाला व्यक्ति धूर्तों से ठगा जाता है।

राजा : परन्तु मेघवर्ण, तू इतने दिनों तक शत्रुओं के किले में रहा किस तरह ? तुझे उन्होंने कुछ भी कष्ट नहीं दिया ?

मेघवर्ण : महाराज, जिससे कार्य निकालना होता है उसके लिए सब कुछ सहा जाता है। लोग जलाने वाले ईंधन को सिर पर ढोया करते हैं। चतुर व्यक्ति तो अपनी कार्य-सिद्धि के लिए शत्रुओं को भी कन्धों पर ढोता है जैसे बूढ़े सर्प ने मेंढकों को कन्धों पर ढोया।

११

जैसा समय वैसा काम

स्कन्धेनापि वहेच्छत्रून् कार्यमासाद्य बुद्धिमान्।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि काम पड़ने पर शत्रु का भी आदर कर ले।

किसी पुरानी फुलवारी में मन्दविष नाम का सर्प रहता था। वह बहुत वृद्ध था, अतः निर्बल होने के कारण वह अपना भोजन तक एकत्रित नहीं कर पाता था। एक दिन मन्दविष नदी के किनारे सुस्त-सा पड़ा था। उसे एक मेंढक ने देख लिया। कुछ समय विचार करने के उपरान्त उसने दूर से ही पूछा :

सर्प ! आज तू अपना भोजन क्यों नहीं खोज रहा ?

सर्प : भाई, तुम अपना काम करो। मुझ मन्द-भाग्य के विषय में पूछकर क्या लोगे?

अब मेंढक की उत्सुकता और बढ़ी और आग्रह करते हुए कहा :

नहीं, भाई तुम्हें यह सब बताना ही पड़ेगा।

सर्प : अगर तुम नहीं मानते तो सुनो—

ब्रह्मपुर नाम के नगर में कौण्डिन्य नाम का एक तपस्वी ब्राह्मण रहता है। वह महान् ब्रह्मनिष्ठ और वेदपाठी है। एक दिन उसका वीस वर्षीय नवयुवक पुत्र मेरे पास से निकला। दुर्भाग्यवश मैंने अपने कठोर स्वभाव के कारण उसके सुशील नामक पुत्र को डस लिया।

पुत्र के निधन का समाचार सुनकर कौण्डिन्य अपने आश्रम की ओर भागा हुआ आया। अपने पुत्र के मृत शरीर को देखकर वह शोक से मूर्छित हो गया। सुशील की मृत्यु का समाचार समस्त ब्रह्मपुर में शीघ्र ही फैल गया। कौण्डिन्य के भाई-बन्धु वहां एकत्रित हो गए।

कहा भी है :

उत्सवे व्यसने युद्धे दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥

उत्सव के समय, दुःख के समय, युद्ध के समय, अकाल पड़ने पर, राष्ट्र में उपद्रव होने के समय, कचहरी और श्मशान में जो साथ देता है, वही बन्धु है।

अपने बन्धु-बान्धवों को एकत्रित देखकर कौण्डिन्य और ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगा। उसे इस भांति विलाप करते देख कपिल नाम के एक गृहस्थी ने समझाते हुए कहा :

कौण्डिन्य, इस अनित्य संसार में सदा रहने वाला कौन है? बालक के उत्पन्न होते ही उसकी मृत्यु उसके साथ हो लेती है। इस संसार में अनेकों बड़े-बड़े राजा-महाराजा उत्पन्न हुए, जिनके पास कई अक्षौहिणी सेना थी। परन्तु आज उनका पता भी नहीं। जीवन के बढ़ते हुए क्षण उसे मत्यु की ओर ही तो ले जाते हैं यहां तक कि जीवन का प्रत्येक क्षण जीवन की समाप्ति का द्योतक है।

कपिल ने इसी भांति कौण्डिन्य को बार-बार समझाया। कपिल के उपदेशों से वह इतना प्रभावित हुआ कि वन जाने को प्रस्तुत हो गया। समय देखकर कपिल ने पुनः आग्रह किया :

कौण्डिन्य, वन जाने से क्या लाभ ? लोभ-मोह में ग्रस्त पुरुषों के लिए तो वन जाना कोई लाभ नहीं देता। उन्हें वहां भी लोभ-मोह सताया करते हैं। जिसे इन लोभ-मोहादि से निवृत्ति है उसके लिए घर ही वन है।

कौण्डिन्य : आपका कहना सत्य है।

कुछ समय विचार कर फिर कौण्डिन्य बोला : हे पुत्रघाती सर्प, मैं तुझे शाप देता हूं कि तुझपर मेंढक सवारी करेंगे।

कपिल के उपदेशों से वैराग्यवश होकर कौण्डिन्य ने संन्यास ले लिया। उस दिन से मैं यहीं पर मेंढकों को सवारी देने के लिए रहता हूं।

यह सारा वृत्तान्त मेंढक ने अपने राजा को सुनाया। वह अपने साथियों को लेकर सर्प पर सवार हो गया। सर्प भी विचित्र चाल से सैर कराने लगा। अगले दिन सर्प धीमी चाल से चलने लगा। उसे इस भांति धीरे-धीरे चलते देखकर मेंढकों

का स्वामी बोला :

सर्प, आज तुम धीरे-धीरे क्यों चल रहे हो ?

सर्प : महाराज खाने को कुछ मिलता ही नहीं।

ऐसा सुनकर मेंढकों का स्वामी बोला :

हमारी आज्ञा से तुम मेंढकों को खाया करो और हमें सैर कराया करो।

फिर क्या था ! सर्प ने धीरे-धीरे सब मेंढकों को खा लिया। यहां तक कि वह मेंढकों के स्वामी को खा गया।

× × ×

यह कथा सुनाकर कौआ शान्त हो गया। मन्त्री बोला : महाराज, समय पड़ने पर तो शत्रु को भी, चाहे वह कितना भी बुरा क्यों न हो, कन्धों तक पर बैठा लेना चाहिए। फिर यह राजा तो बड़ा धर्मात्मा एवं सुशील है। अतः इससे सन्धि करने में कोई भी हानि नहीं।

उसी समय जम्बुद्वीप से एक गुप्तचर ने आकर चित्रवर्ण से निवेदन किया : महाराज, सिंहलद्वीप के राजा सारस के सैनिकों ने जम्बुद्वीप को घेर लिया है।

गृध्र मन ही मन बोला : सर्वज्ञ ! तू कितना नीतिज्ञ है। तेरे लिए यह योग्य ही था।

राजा क्रोध में भरकर बोला :

मन्त्री, सेना को तैयार करो। मैं जम्बुद्वीप में चलकर उस दुष्ट सारस को देखता हूं।

मन्त्री : राजन्, मनुष्य को कभी भी बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए। इसी विषय में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं।

१२

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय

सहसा विदधीत न क्रियाम् ।

कोई भी काम उतावलेपन में न करो
तभी आपत्तियों से बचाव होगा ।

उज्जयिनी नगरी में माधव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। एक दिन उसकी पत्नी, पति से बच्चे की रक्षा के लिए कहकर स्वयं स्नान करने चली गई। वह पुत्र के पास बैठा उसकी देख-रेख कर रहा था कि उसके लिए कहीं से भोजन का निमन्त्रण आ गया।

बेचारा माधव विचार में पड़ गया—यदि जाता हूं तो बालक की रक्षा कौन करेगा; यदि नहीं जाता तो यजमान अवश्य ही किसी दूसरे ब्राह्मण को बुला लेगा। यजमान को आसन देकर वह घूम-फिरकर विचार करने लगा। बहुत विचार करने के उपरान्त उसे एक युक्ति सूझी। उसने पले हुए नेवले को बालक की रक्षा के लिए वहीं छोड़ दिया और स्वयं यजमान के साथ भोजन खाने के लिए चला गया।

ब्राह्मण के जाने के पश्चात् एक सर्प बिल में से निकला और शिशु की ओर फन उठाकर देखने लगा। सर्प को देखते ही बालक की रक्षा करने के विचार से नेवला सर्प पर झपटा और उसने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

भोजन के उपरान्त ब्राह्मण अपने घर में घुसा। नेवले ने ब्राह्मण का द्वार पर ही स्वागत किया। सर्प का रक्त अब

भी नेवले के मुंह पर लगा था। ब्राह्मण को वह दूर से ही दिखाई दे गया। उसने समझा कि नेवले ने पुत्र को खा लिया। फिर क्या था उसने हाथ के डंडे से नेवले के प्राण ले लिए।

परन्तु घर में जाकर जब उसने बच्चे को खेलते हुए और सर्प के टुकड़े देखे तो महान् पश्चात्ताप हुआ।

× × ×

मन्त्री बोला : इसलिए मैं कहता हूं प्रत्येक कार्य विचार कर करना चाहिए।

राजा : मन्त्रिन्, यदि तुम्हारा यही विचार है तो सन्धि कर लें। पर क्या यह सम्भव है ?

मन्त्री : महाराज आप चिन्ता न करें। हिरण्यगर्भ और उसका मन्त्री दोनों ही योग्य एवं विद्वान् हैं। विद्वान् लोग पारस्परिक कलह से सदा दूर रहा करते हैं।

× × ×

चित्रवर्ण और उसके मन्त्री की बातें हिरण्यगर्भ के दूत ने स्पष्ट रूप से अपने स्वामी को कह सुनाई। और कहा :

महाराज, चित्रवर्ण का मन्त्री आपसे सन्धि करने आ रहा है।

हिरण्यगर्भ को कुछ शंका हुई। क्योंकि शत्रु की नीति का कुछ भी पता चलाना बहुत कठिन होता है। शत्रु सन्धि के बहाने ही नाश कर दिया करते हैं। परन्तु मन्त्री चक्रवाक ने हिरण्यगर्भ को समझाया।

हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री समेत चित्रवर्ण के मन्त्री का स्वागत किया। दोनों पक्षों ने धर्म की प्रतिज्ञा करके परस्पर सन्धि कर ली।

× × ×

विष्णुशर्मा बोला : राजपुत्रो, मैंने तुम्हें सन्धि-नीति भी सुना दी। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं ?

राजपुत्र : गुरुदेव, आपकी कृपा से हमें नीति का समुचित ज्ञान हो गया है। अब हमें आप कृपा करके अपना आशीर्वाद दीजिए।

विष्णुशर्मा : ऐसा है तो आओ, हम लोग कल्याण के लिए अपने आराध्य देव से प्रार्थना करें। तदनन्तर तुम अपने राज्य में जाकर अपनी प्रजा का पालन-पोषण करो।

॥ चतुर्थ खंड समाप्त ॥

इति

❖ ❖ ❖

11030